श्रीवर्धमानाय नमः ।

स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी विरचित

जैन-क्रियाकोष

मंगल ।

दोहा—प्रणमि जिनंद मुनिंदको, नमि जिनवर मुखवानि ।
क्रियाकोष भाषा कहूं, जिन आगम परवानि ॥१॥
मोक्ष न आतम ज्ञान बिन, क्रिया ज्ञान बिन नाहिं ।
ज्ञान विवेक बिना नहीं, गुन विवेकके माहिं ॥२॥
नहिं विवेक जिनमत बिना, जिनमत जिन बिन नाहिं ।
मोक्षमूल निर्मल महा, जिनवर त्रिभुवन माहिं ॥३॥
तातैं जिनको बंदना, हमरी बारं बार ।
जिनतैं आपा पाइये, तीन भुवनमें सार ॥४॥
द्वीप अढ़ाईके विषैं, आरज क्षेत्र अनूप ।
सौ ऊपर सत्तरि सबैं, कृतभूमि शुभरूप ॥५॥
जिनमें उपजे जिनवरा, व्रत विधान निरूप ।
कबहू इक इक क्षेत्रमें, इक इक ह्वे जिनभूप ॥ ६ ॥
सब सत्तरि सौ ऊपरें, उत्कृष्टे भुवनेस ।
तिनमें महा विदेहमें, अस्सी दूण असेस ॥ ७ ॥

भरतैरावत छेत्र दस तिनके दस जिनराय।
ए दस अर वे सर्व ही, सौ सत्तरि सुखदाय॥ ८॥
घटि ह्वै तो जिन बीसते, कटै न काहू काल।
पंच बिदेह विषै महा, केवल रूप बिशाल॥ ९॥
चलै धर्म द्वय सासता, यति श्रावक व्रत रूप।
टलै पाप हिंसादिका, उपजें पुरुष अनूप॥ १०॥
कालचक्रकी फिरणि बिन, कुलकर तहा न होय।
नाहिं कुलिंगाम वरति है, ताते रुद्र न जोय॥
तीर्थाधिप चक्री हली, हरि प्रतिहरि उपजंत।
इन्द्रादिक आवें जहा, करें भक्ति भगवंत॥
तीर्थंकर अर केवली, गणधर मुनि विहरंत।
जहा न मिथ्या मारगी, एक धर्म अरहंत॥
तात मात जिनराजके, अर नारद फुनि काम।
परघट पुरुष पुनीत बहु शिवगामी गुण धाम॥
ह्वै विदेह मुनिवर जहा, पंच महाव्रत धार।
तातें महा विदेहमें, सत्यारथ सुखकार॥
भरत रावत दस विषैं, कालचक्र है दोय।
अवसर्प्पिणी उतसर्पिणी,, षट२ काला सोय॥
तिनमें चौथे काल ही, उपजें जिन चौबीस।
द्वादश चक्री नव हली, हरि प्रतिहरि अवनीस❋॥
त्रिसठि सलाका पुरुषए, जिन मारग धरधीर।

❋ शरीर रहित। २ स्वामी।

इनमें तीर्थंकर प्रभू, और भक्ति वर वीर ॥
तात मात जिनदेवके, चौबीसा चौबीस ।
नौ नारद चौदा मनू, कामदेव चौबीस ॥
एकादश रुद्रा महा, इत्यादिक पद धारि ।
उपजे चौथे काल ही, ए निश्चै उर धार ॥२०॥
या विध भये अनन्त जिन, होसी देव अनंत ।
सबको मारग एक ही, ज्ञान क्रिया बुधिवंत ॥
सब ही शान्ति प्रदायका सब ही केवल रूप ।
सबही धर्म निरूपका, हिंसा-रहित सरूप ॥
सबही आगम भासका, सब अध्यातम मूल ।
भुक्ति-मुक्ति-दायक सबै, ज्ञायक सूक्ष्म थूल ॥
बरननमें आवें नहीं, तीन कालके नाथ ।
सर्व क्षत्रके जिनवरा, नमो जोरि युग हाथ ॥
भरतक्षेत्र यह आपनो, जम्बूद्वीप मझारि ।
ताके मैं चौबीसिका, बन्दू श्रुति अनुसारि ॥
निर्वाणादि भये प्रभू निर्वाणी चौबीस ।
तेअतीत जिन जानिये, नमो नाय निजशीश ॥
जिन भाख्यौद्वै विधि धरम, परमधामकोमूल ।
यति श्रावकके भेद करि, इक सूक्ष्म इकथूल ॥
बहुरि वर्तमाना जिना, रिषभादिक चौबीस ।
नमों तिनें निजभाव करि जिनके रागनरीस ॥
तिनहूं सोही भाषियौ, द्वै विधि धर्म विलास ।
महाव्रत अणुव्रतमय, जीवदया प्रतिपाल ॥

बहुरि अनागत कालमें, ह्वैगे तीरथनाथ।
महापद्म प्रमुख प्रभु, चौबीसा जड़हाथ ॥३०॥
तातें सोही भासि है, जे जोऽनादि प्रबन्ध।
सबको मेरी बन्दना, सबको एक निबन्ध ॥
चौबीसी तीनूं नमूं नमो तीस चौबीस।
श्रीमंधर आदि प्रभु नमन करो फुनि बीस ॥
पंद्रा कर्म धरा सबै, तिनमे जे जिनराय।
अर सामान्य जु केवली, वर्तैं निर्मल काय ॥
तिन सबको परनाम करि, प्रणमो सिद्धअनंत।
आचारिज उपाध्यायको, बिनऊं साधु महन्त ॥
तीन कालके जिनवरा, तीन कालके सिद्ध।
तीन कालके मुनिवरा बन्दो लोक प्रसिद्ध ॥
पंच परमपद-पदप्रणमि बन्दों केवलवानि।
बंदों तत्वारथ महा, जैनधर्म गुणखानि ॥
सिद्धचक्रकूं बंदिकै सिद्ध जन्त्रकूं बन्दि।
नमि सिद्धान्त-निबंधकों, समयसार अभिनंदि ॥
बंदि समाधि सुतंत्रकूं, नमि समभाव-सरूप।
नमोकारकूं करि प्रणति, भाषोंव्रत अनूप ॥
चउ अनुयोगहिं वंदिके, चउ सरणा ले शुद्ध।
चउ उत्तम मंगल प्रणमि, कहूं क्रिया अविरुद्ध ॥
वेद-धर्म गुरु प्रणति करि, स्यादवाद अवलोकि।
क्रियाकोष-भाषा कहूं, कुन्दकुन्द मुनि ढोकि ॥४०॥
अरचों चरचा जैनकी, चरचों चरचा जैन।

क्रोध लोभ छल मोह मद, त्यागि गहू गुन नैंन ॥
कतृ॑म और अकतृ॑मा जिन प्रतिमा जिनगेह।
तिन सबकूं परणाम करि, धारू धर्म सनेह ॥
गाऊं चउविधि दान शुभ, गाऊं दशधा धर्म।
गाऊं षोडस भावना, नमि रतनत्रय धर्म ॥
सतऊं सर्व यतीसुरा, बिनऊं आर्या सर्व।
सब श्रावक अर श्राविका, नमन करों तजि गर्व ॥
करों बीनती मना धर, समदृष्टिनसों एह।
अपनोंसौं धीरज मुझे, देहु, धर्ममें लेह ॥
लोकशिखरपर थान जो, मुक्तिक्षेत्र सुखधाम।
जहां सिद्ध शुद्धातमा, "तिष्टें केवलराम ॥
नमों नमों ता क्षेत्रको, जहा न कोई उपाधि।
आदि व्याधि असमाधि नहिं बरतै परम समाधि।
प्रणमि ज्ञान कैवल्यकों, केवल दर्शन ध्यान।
यथाख्यात चारित्रकूं, बन्दों सीस नवाय ॥
प्रणमि संयोग सथानको, नमि अजोग गुणथान।
क्षायक सम्यक बंदिकै, बरणों व्रत विधान ॥
बन्दों चउ आराधना, बंदों उपशम भाव।
जाकरि क्षायक भाव ह्वै, होय जीव जिनराय ॥५०॥
मूलोत्तर गुण साधुके, व्है जिनकरि जनसिद्ध।
तिनकूं बंदि कहू क्रिया, त्रेपन परम प्रसिद्ध ॥
जहा मुनि निज ध्यान करि, पावें केवलज्ञान।
बंदो ठौर प्रशस्त जो, तीरथ महा निधान ॥

जा थानकसों केवली, पहुंचे पुर निर्वाण।
बंदो थान पुनीत जो, जा सम थानन आन॥
तीर्थङ्कर भगवानके, बंदो पंच कल्याण।
और केवलीको नमों, केवल अर निर्वाण॥
नमों उभैविधि धर्मको, मुनि श्रावक निरधार।
धर्म मुनिनको मोक्ष दे, काटै कर्म अपार॥
तातें मुनि मत अति प्रबल, बार बार थुति योग।
धन्य धन्य मुनिराज ते, तजें समस्त अजोग॥
पर परणति जे परिहरें, रमें ध्यानमें घोर।
ते यमकूं निज दास करि, हरो महा भव पीर॥
मुनिकी क्रिया विलोकिकै, हमपै बरनि न जाय।
लौकिक क्रिया गृहस्थकी, बरनूं मुनि गुण ध्याय॥
यतिव्रत ज्ञान विना नहीं, श्रावक ज्ञान विना न।
बुद्धिवंत नर ज्ञान बिन, खोवें वादि दिनान॥
मोक्षमारगी मुनिवरा, जिनकी सेव करेय।
सो श्रावक धनि धन्य है, जिनमारग चित देय॥१०॥
जिन मंदिर जो शुभ रचे, अरचै जिनवर देव।
जिनपूजा नितप्रति करै, करे साधुकी सेव॥
करे प्रतिष्ठा परम जो, जात्रा करे सुजान।
जिन शासनके ग्रन्थ शुभ, लिखवावै मतिवान॥
चउविधि संघतणो सदा, सेवा धारे वीर।
पर उपगारी सर्वकी, पीड़ा हरे जु वीर॥
अपनी शक्ति प्रणाम जो, धारैं तप अर दान।

जीवमात्रको मित्र जो, शीलवंत गुणवान ॥
भाव शुद्ध जाके सदा, नहिं प्रपंचको लेस।
परधन पाहन सम गिनै, तृष्णा तजी विशेष ॥
तातैं गृहपति हू प्रबल, ताकी क्रिया अनेक।
जिनमें त्रेपन मुख्य हैं, तिनमें मुख्य विवेक ॥
नमस्कार गुरुदेवको, जे सब रीति कहेय।
जिनवानी हिरदै धरी, ज्ञानवन्त व्रत लेय ॥
क्रियाकाडकों करि प्रणति भाषों किरिया कोष।
जिनशासन अनुसार शुभ, दयारूप निरदोष ॥
प्रथमहिं त्रेपनजे क्रिया, तिनके बरनों नाम।
ज्ञान-विराग-सरूपजे, भविजनकूं विश्राम ॥

त्रेपन क्रिया।

गाथा—गुण-वय सम-पडिमा, दाणं जलगालणं च अणत्थामियं।
दंसणणाण चरित्ताकिरिया तवण्ण सावया भणिया ॥

चौपाई।

गुण कहिये अटमूल जु गुणा, वय कहिये व्रत द्वादस गुणा।
तव कहिये तप बारह भेद, सम कहिये समदृष्टि अभेद ॥७०॥
पडिमा नाम प्रतिज्ञा सही, ते एकादस भेद जु लही।
दाण कहिये दान जु चार, अर जलगालण रीति बिचार ॥
निसिको खानपान नहिं भला, अन्न औषधी दूध न जला।
रात्रि विषे कछु लेवौ नाहिं, अति हिंसा निसिभोजन माहिं ॥

कह्यो 'अणत्थमिय' शब्द जु अर्थ निसिभोजन सम नाहिं अनर्थ
दंसण णण चरित्र जू तीन ए त्रेपन किरिया गिणि लीन ।
प्रथमहिं आठ मूलगुण कह्यो, गुण परसाद विषाद न कह्यो ॥
मद्य मास मधु मोटे पाप, इन करि पावे अतुलित पाप ॥
वर पीपर पाकर नहिं लीन, ऊमर और कठूमर हीन ।
तीन पाच ए आठोंवस्तु, इनको त्यागे सकल परशस्त ॥
मन-वच-काय तजौ नरनारि, कृत-कारित अनुमोद विचारी ।
जिनमें इनको दोष जु लगै, तिन वस्तुनतें बुधजन भगे ॥
अमल जाति सबही नहिं भक्ष, लगै मक्षको दोष प्रत्यक्ष ।
रस चलितादिक सड़िय जु वस्तु, ते सब मदिरा तुल्यउ वस्तु ॥
जा खाये मन ठीक न रहै, सो सब मदिरा दूषण लहै ।
अर्क अनेक भातिके जेह, खइवेमें आवत है तेह ॥
आली १ वस्तु रहै दिन घना, तामें दोष लगे मदतना २ ।
अब सुनि आमिष ३ दोष जु भया, चर्मादिक घृत तेल न लया ।
हींग कदापि न खावन बुधा, बींधौ सीधौ भखिवौ मुधा ।
चून चालियौ चलनी चाम, नीच जाति पीस्यौहुन काम ॥८०॥
फूली आयौ धान अखान, फूल्यौ साग तजौ मतिवान ।
कंद अथाणा माखन त्याग, हाट मिठाई तज बड़ भाग ॥
निसि भोजन अणछाण्यूं नीर, आमिष तुल्य गिनें बरवीर ।
निसि पीस्यौ निसि राध्यौ होय, हाड चामको परस्यौ जोय ॥
मास अहारीके घर तनो, सो सब मास समानहिं गिनो ।
विकलत्रय अर तिर नर जेह, तिनको मास रुधिरमय जेह ॥

१ गीली । २ मदिराका । ३ मांस ।

तजौ सबै आमिष अघखानि, या सम पाप न और प्रमानि।
त्यागौ सहत जु मदिरा शमा, मधू दोउको नाम निरभ्रमा॥
अर जिन वस्तुनिमें मधूदोष, सो सब तजहु पापकाण पोष।
काफिब- और मुरब्बा आदि, इनहिं खाहिं तिनको व्रतबादि॥
मधु मदिरा पल जे नर गहे, ते शुभगतितें दूरहिं रहैं।
नर्कनिगोद माहिं दुख सहैं, अतुल अपार त्रासना ३ लहैं॥
तातैं तीन मकार धिकार, मद्य मास मधु आप अपार।
ये तीनोंऔ पञ्च कुफला, तीन पाच ये आठों मला॥
इन आठोंमें अगणित त्रसा, उपजै मरण करें परवसा।
जीव अनन्ता बहुत निगोद, तातें कृत कारित अनुमोद॥
इनको त्याग किये वसु मूल, गुणा होंहिं अघतें प्रतिकूल।
पांच उदम्बर तीन मकार, इनसें पाप न और प्रकार॥
बार बार इनकों धिक्कार, जो त्यागै सो धन्य विचार।
इन आठनसें चौदा और, भखै सु पावै अति दुख-ठौर॥१०॥
बहुल अभक्षन में बाईस, मुख्य कहे त्यागें व्रतईस।
ओला नाम बड़ा जु बखानि, जीवरासि भरिया दुखखानि॥
अणछाण्यां जलके बंधाण, दोष करै जैसे संधाण।
भखै पाप लागे अधिकाय, तातें त्याग करौ सुखदाय॥
बोक बड़ामे दूषण बड़ा, खाहिं तिके जाणे अति जड़ा।
दही महीमें विदल जु वस्तु खाये सुकृत जाय समस्त॥
तुरत पचेन्द्री उपजे तहा, विदल दही मुखमें ले जहां।
अन्न मसूर मूंग चणकादि, मोठ उड़द मटूर तूरादि॥
अर मेवा पिस्ताजु बिदाम, चारोळी आदिक अति नाम।

जिन वस्तुनिकी ह्वै द्वै दाल,सोसो सब दधि भेला टालि ॥
जानि निसाचर जे निसि अरें, निसभोजन करि भव दुख करें ।
तातें निसिभोजन तजि भया, जो चाहें जिनमारग लया ॥
दोय महूरत दिन जब रहै, तबतें चउविहार बुध गहै ।
जौलौं जुगल महूरत दिना, चढि है तौलौं अनसन गिना ॥
रात-बसौं अर रातहिं कियो,रात-पिस्यौ कबहू नहिं लियौ ।
जहा होय अंधेरो वीर, तहा दिवसहू असन न वीर ॥
दृष्टि देखि भोजन करि शुद्ध, दृष्टि देखि पग धरहु प्रबुद्ध,
बहुवीजा जामें कण घणा, ते फल कुफल जिनेसुर भणा ॥
प्रगट निजारा आदिक जेह, बहुवीजा त्यागौ सब तेह ।
बेंगण जाति सकल अघखानि, त्याग करौ जिन आज्ञा मानि १००॥
संधाणा दोषीक विसेस, सो भव्या छाड़ौ जु असेस ।
ताके भेद सुनो मनलाय, सुनि यामें उपजै अधिकाय ॥
उत्थाणा संधाण मथाण, तीन जाति इनकी जुबखानि ।
राई लूणी कलूंजी आदि, अम्बादिकमें डारहिं वादि ॥
नाखि तेलमे करहिं अथाण, या सम दोष न सूत्र प्रमाण ।
त्रसजीवा तामें उपजन्त, मखिया आमिष-दोष लहन्त ॥
नीबू आम्रादिक जे फला, लूण माहिं डारै नहिं भला ।
याको नाम होय संधाण, त्यागें पण्डित पुरुष सुजाण ॥
अथवा चलित रसा सब वस्त, संधाणा जाणो अप्रशस्त ।
बहुरि जलेबी आदिक जोहि, डोहा राब मथाणा होय ॥
लूण छाछि माहीं फल डारि, केर्यादिक जे खाहिं संवारि ।
तेहि बिगारें जन्म सुकीय, जैसे पापी मदिरा पीय ॥

अब सुनि चून तनी मरजाद, भाषै श्रीगुरु जो अविवाद।
शीतकालमें सातहि दिना, ग्रीषममें दिन पांचहिं गिना॥
बरषारितु माहीं दिन तीन, आगे संधाणा गणलीन।
मरजादा बीतें पकवान, सो नहिं भक्ष कहैं भगवान॥
ताहि भखें जु असूत्री लोक, पावें दुरगतिमें दुख-शोक।
मर्यादाकी विधि सुनि धीर, जो भाषी गौतम प्रति वीर॥
जामें अन्न जलादिक नाहिं, कछु सरदा जामाहीं नाहिं।
बूरा और बतासा आदि, बहुरि गिंदौडादिक जु अनादि॥११०॥
ताकी मर्यादा दिन तीस, शीतकालमें भाषी ईश।
ग्रीषम पंद्रा वर्षा आठ, यह धारौ जिनवाणी पाठ॥
अर जो अन्नतणों पकवान, जलको लेश जु माहैं जान।
आठ पहर मरजादा जास, भाषें श्रीगुरु धर्म प्रकाश॥
जल–वरजित जो चूनहिं तनों, घृत-मीठी मिलिकै जो बनों।
ताकी चून समानहिं आनि, मरजादा जिन आज्ञा मानि॥
भुजिहा वड़ा कचौरी पुवा, मालपुवा घृत-तेलहिं हुवा।
इत्यादिक है अवरहु जेह, लुचई सीरा पूरी एह॥
ते सब गिना रसोई समा, यह उपदेश कहै पति रमा।
दारि भात कढ़ही तरकारि, खिचड़ी आदि समस्त विचारि॥
दोय पहर इनकी मरजाद, आगें श्रीगुरु कहैं अस्वाद।
केई नर संधारक त्यागि, ल्यूंजी खाय सवादहिं लागि॥
केरी नींबू आदि उकालि, नाना विधि सामग्री घालि।
सरस्यूं केरी तेल तपाय तामें तलें सकल समुदाय॥
जिह्वालंपट बहु दिन राख, खाय तिके मतिमन्द जु भाख।

तरकारी सम ल्यूंजी एह, आगे संधाणा समुजेह ॥
अणजाण्यूं फल त्यागहु मित्र ! अणछाण्यो जल ज्यों अपवित्र ।
त्यागौ कंदमूल बुधिवंत, कन्दमूलमें जीव अनन्त ॥
गारि न कबहु भखहु गुणवन्त गारी कबहु न काढ़उ संत ।
हरी गारिमें जीव असंख, निन्दैं साधु अशंक अकंख ॥१२०॥
जा खाये छूटे निज प्राण, सो विषजाति अभक्ष प्रवान ।
आफू और महोरा आदि, तजौ सकल सुनि सूत्र अनादि ॥
काचौ माखण अति हि सदोष, भखिया करै सबै सुभ सोख ।
पहले आमिष दूषण माहिं, फुनि फुनि निन्धौ संसै नाहिं ॥
फल अति तुच्छ खाहु मति वीर, निन्दे महावीर जगधीर ।
पालौ राति जमावै कोय, ताहि भखत दुरगति फल होय ॥
निज सवाद तजि ह्वै विपरीत, सो रसचलित तजा भवभीत ।
आगें मदिरा दूषण महै, निंद्यौ ताहि सुबुध नहिं गहै ॥
ए बाईस अभख तजि सखा, जो चाहौ अनुभव रस चखा ।
अवर अनेक दोषके भरे, तजो अभख भव्यनि परिहरे ॥
फूल जाति सब ही दोषीक, जीव अनन्त फरे तहकीक ।
कबहु न इनकों सपरस करौ,इह जिन आज्ञा हिरदै धरौ ॥
खावौ और सूंघिवौ सदा इनकूं तजहु न ढाकहु कदा ।
साक-पत्र सब निंद बखानि, त्याग करौ जिन आज्ञा मानि ॥
नेम धर्म व्रत राख्यौ चहै, तौ इन सबकूं कबहु न गहै ।
झाड़ तनें बड बोरि जु तने, तजौ बौर त्रस जीव जु घने ॥
पेठा और कोहला तजौ, तजितरबूज जिनेसुर भजौ ।
जाबू और करोंदा जेहु, दूध झरै त्यागौ सहु तेह ॥

कन्द शाकदल फूल जु त्यागि, साधारण फलतें दुर भागि।
जो प्रत्येकहु छाडै वीर ता सम और न कोई धीर ॥१३०॥
जो प्रत्येक न त्यागे जाय, तौ परमाण करे सुखदाय।
तेहु अलपहो कबहुक खाय, नहिं तोड़े न तुड़ावन जाय ॥
ताजा ले बासी नहिं भखै, रसचलतादिक कबहु न चखै।
हरितकायसों त्यागै प्रीति, सो जानें जिनमारग-रीति ॥
जो अनन्तकाया सुखदाय, सब साधारण त्यागौ राय।
तजि केदार तू बडी सदा, खाहु मनालीढिस तुम कदा ॥
कचनारादिक डौंडी तजौ, तजि अणफोड्यो फल जिन भजौ।
पहली बिदलतनूं अति दोष,—भाख्यौ भेद सुनहु तजि रोष ॥
अन्न मसूर मूंग चणकादि, तिनकी दालि जु होय अनादि।
अर मेवा पिस्ता जु बिदाम, चारौली आदिक अतिनाम ॥
जिन जिन वस्तुनको है दालि, सो सो सब दधि मेला टालि।
अर जो दधि मेलो मिष्टान, तुरतहिं खावौ सूत्र प्रमान ॥
अंतमहूरत पीछें जीव,—उपजो इह गावें जगपीव।
तातै मीठाजुत जो दही, अंतमहूरत पहले गही ॥
दधि-गुड़ खावौ कबहु न जोग, बरजो श्रीगुरु वस्तु अजोग।
फुनि सुनहु ! मित्र इक बात, राईलूण मिलें उतपात ॥
तातैं दही महीमें करै, तजौ राबता कांजी बरै।
घी ताजा गहिबौ भविलोय, सूद्रनको घृत जोगि न होय ॥
स्वादचलित जो खावै घीव, सो कहिये अविवेकी जीव।
चिरत सोधिको लेवौ अलप, भजिवौ जिनवर त्यागि विकल्प १४०
घृत हू छाडै तौ अति तपा, नीरस तप धरि श्रीजिन जपा।

सिंधवलोंन अतिनिको लेन, कर्तृम लोन सबै तजिदेन ॥
जो सिंधवहू त्यागै भया, महा तपस्वी श्रुतमें लया।
अब तुम गोरसकी विधि सुनों, जिनवरकी आज्ञा उरमुनो ॥
दोहत जब महिषी अर गाय, तबतें इह मरजाद गहाय
काचौ दूध न राखौ सुधी, द्वै घटिका राखै तौ कुधी ॥
काचौ दूध न लेवौ वीर, अणछाण्यं पय तजिबो धीर।
अंतर एक महूरत बसा, उपजै जीव असंखित त्रसा ॥
जाको पय है तैसे जीव, प्रगटे इह भाषें जगपीव।
पंचेन्द्री सन्मूर्छन प्राणि, भैया तू जिनवचन प्रवाणि ॥
इह तो दूध तणी विधि कही, अब सुनि दहो महाव्वी सही।
जामण दीयो है जिह दिना, ताके दूजो दिन शुभ गिना ॥
पीछे दधि खावो नहिं जोगि, इह भाषो जिनराज अरागि।
दधिको मथियौ पानी डारि ताको नाम जु छाछि विचारि ॥
ताही दिवस होय सो भक्ष, यह जिन आज्ञा है परतक्ष।
मथता हीजा माहीं तोय, बहुरयौ वारि न डारौ होय ॥
मथिया पाछे काचौ वारि, नाख्यौ सो लेवौ जु विचारि।
जेतौ काचा जलको काल, तेतौ ही ताको जु विचारि ॥
छाण्यू जलसो काचौ रहै, एक महूरत जिनवर कहै।
आगें त्रसजीवा उपजंत, अणछान्या को दोष लगंत ॥ १५० ॥
तिक्त कषाय मिल्यौ जो नीर, सो प्राशुक भाख्यौ जिन वीर।
दोय पहर पहिली हो गहौ, यह जिन आज्ञा हिरदै वहो।
तातौ जलजो भात उकाल, आठ पहर मरजादा काल।
आगै सनमूर्छन उपजाहिं, पीवत धर्मध्यान सब जाहिं ॥

दोहा—अघ-तरवरको मूल इह, मोह मिथ्यात जु होय।
राग दोष कामादिका, ए सकंध बहु जाय॥
अशुभ क्रिया शाखा घनी, पल्लव चंचल भाव।
पत्र असंजम अव्रता, छाया नाहिं लखाव॥
इह भव दुख भाखे पहुप, फल निगोद नरकादि।
इह अघ-तरुको रूप है भववन माहि अनादि॥
चौपाई—क्रिया कुठार गहै कर कोय, अघतर वरक काटै सोय।
जे बेंच दधि और जु मठा, उदर भरणके कारण शठा॥
तिनकों माल लेय जो खाहिं ते नर अपनों जन्म नसाहिं।
तातैं मोलतनो दधि तजौ, यह गुरु आज्ञा हिरदै मजौ॥
दधी जमावै जा विधि व्रती, सो विधि धारहु भापहिं जती।
दूध दुहाकर ल्यावै जबै, ततछिन अगनि चढाबै तबै॥
रूपौ गरम करे पयमाहि, जामण देइ जु संसै नाहिं।
जमे दही या विधिकर जोहु बाधे कपरा माहीं सोहु॥
बूंद रहे नहिं जलकी एक, तबहिं सुकाय धरे सुविवेक।
दहीवड़ी इह भाषी सही, गृही जमावै तासों दही॥ १६०
अथवा दधिमें रूई भेय, कपरा भेय सुकाय धरेय।
राखे इक द्वै दिन ही जाहि, बहुत दिना राखे नहि ताहि॥
जलमें घोलिर जामण देय, दधि ले तौ या विधिकरि लेय।
और भाति लेवौ नहिं जोगि, भाखों जिनवर देव अरोगि॥
शीतकालकी इह विधि कही, उष्ण रु बरषा रास्तै नहीं।
जाहि सर्वथा छाड़ै दधी, तासम और न कोई सुधी॥
सूद्रनतें पात्रनिको दुग्ध, दधि-घृत-छाछि भखौं ते मुग्ध।

उत्तम कुल हू जे मतिहीन, क्रियाहीन जु कुविसन अधीन॥
तिनके घरको कछहु न जोगि, तिनको किरिया बहुत अजोगि।
दूध ऊंटणी मेड़िन तनो, निंद्यौ जिनमत माहीं घनों॥
गो महिषी विन और न भया, कमहु न लेनों नाहीं पया।
महिषी दूध प्रमाद करेय, ताते गायनिको पय लेय॥
नीरसव्रत धर दूधहिं तजै, तातें सकल दोष ही भजै।
हाट विकंते चूनरु दालि, बुधजन इनको खावौ टालि॥
बींधौ घोटै पीसै दलै, जीवदया कैसे पलै।
चूलो संखतणों कसतूरि, इनको निंद कहैं जिनसूरि॥

दोहा—चरमसपरसी वस्तुको, खातें दोष जु होय।
ताको संक्षेपहिं कथन, कहों सुनो भविलोय॥
मूके पसूके चर्मको; चीरै जो चण्डार।
तो चण्डालहिं परसिकै, छोति गिनैं संसार॥१७०॥
तौ कैसे पावन भयौ, मिल्यौ चर्म सों जोहि।
आमिष तुल्य प्रभू कहे, याहि तजौ बुध सोहि॥
उपजै जीव अपार सुनि, जिनवानी उर धारि।
जा पसुको है चर्म जो, तैसे ही निरधारि॥
सन्मूर्छन उपजैं जिया, तातैं जल घृत तेल।
चर्म सपरसे त्यागिवे, भाषैं साधु अचेल॥
जैसे सूरज काचके, रूई बीचि धरेय।
प्रगटै अगनि तहा सही, रूई भस्म करेय॥
तैसे रस और चर्मके जोगै, जिय उपजन्त।
खानेवारेके सकल, धर्मव्रत लुपिजन्त॥

माजि धोय अर पूंछ जु राछा, राखौ उज्जल निर्मल आछा ।
दया सहित करणी सुखदाई, करुणा बिन करणी दुखदाई ॥ २०।
जीवनकूं सन्ताप न देवै, तब आचार तणी विधि लेवै ।
बिन जिनधर्मी उत्तम वंसा, देइन लेयसु राछनि संसा ॥
श्रावक कुल-किरिया करि युक्ता, तिनके करको भोजन युक्ता ।
अथवा अपने करको कीयो, आरम्भी श्रावकने लीयौ ॥
अन्यमती अथवा कुलहीना, तिनके करको कबहु न लीना ।
अन्य जाति जो भींटै कोई, तौ भोजन तजवौ है सोई ॥
नीली हरी तजै जो सारी, तासम और नहीं आचारी ।
जो न सर्वथा छाडी जाई, तौ प्रत्येक फला अलपाई ॥
हरी सुकावौ योग्य न भाई, जामे दोष लगै अधिकाई ।
सूके अन्न औषधी लेवा, भाजी सूकी सब तजि देवा ॥
पत्र-फूल-कन्दादि भखें जे, साधारण फल मूढ चखे जे ।
ते नहिं जानों जैनी भाई, जीभलंपटी दुरगति जाई ॥
पत्र फूल कन्दादि सबै ही, साधारण फल सर्व तजै ही ।
अर तुम सुनहु विवेकी भैय्या, भेलै भोजन कबहुं न लैया ॥
मात तात सुत बाधव मित्रा, भेले भोजन अति अपवित्रा ।
महा दोष लागै या माहीं, आमिषको सो संशय नाहीं ॥
अपने भोजनके जे पात्रा, काहूकूं नहिं देय सुपात्रा ।
सो भेले जीमें कहो कैसे, भाखें श्रीजिन नायक ऐसे ॥
माहिं सराय न भोजन भाई, जब श्रावकको व्रत रहाई ।
अन्तिज नीचनके घर माही, कबहुं रसोई करणी नाहीं ॥३०॥
मांस त्यागि व्रत जो दिढ़ धारै, नीचनको संसर्ग न कारै ।

उत्तम कुल है परमत धारी, तिनहूके भोजन नहिं कारी ॥
जैन धर्म जिनके घट नाहीं, आनदेव पूजा घर माहीं।
तिनको छूयौ अथवा करको, कबहू न खावै तिनके घरको ॥
कुल किरिया करि आप समाना, अथवा आप थकी अधिकाना।
तिनको छुयौ अथवा करको, भोजन पावन तिनके घरको ॥
अर जे छाणि न जाणे पाणी, अन्न वीणकी रीति न जाणी।
भक्षाभक्ष भेद नहि जाने, कुगुरु कुदेव मिथ्यामत मानें ॥
तिनते कैसी पाति जु मित्रा, तिनको छूयौ है अपवित्रा।
चर्म रोम मल हाथीदन्ता, जेहिं कचकडा विकल कहन्ता ॥
तिनतैं नहिं भोजन सम्बन्धा, यह किरियाको कह्यौ प्रबन्धा।
जङ्गम जीवनके जु शरीरा, अस्थि चर्म रोमादिक बीरा ॥
सब अपवित्रा जानि मलीना, थावर दल भोजनमे लीना।
रोमादिकको सपरस होवै, सो भोजन श्रावक नहिं जोवै ॥
नीला वस्त्र न भींटै सोई, नाहिं रेशमी वस्त्रहु कोई।
बिना धोया ह्वै कपरा नाहीं, इह आचार जैनमत माहीं ॥
दया लिया है किरिया धारी, भोजन करै सोधि आचारी।
पाच ठावसूं भोजन नाहीं, धोति डुपट्टा बिमल धराहीं ॥
बिन उज्जलता भई रसोई, त्याग करै ताकूं विधि जोई।
पंचेन्द्री पसुहूको छूयौ, भोजन तजै अबिधितैं हूयौ ॥
सौधतनी सब वस्तु जुलेई, वस्तु असोधी त्यागै तेई।
अन्तराय जो परै कदापी, तजै रसोई जीव निपापी ॥४०॥
दया क्रिया बिन श्रावक कैसें, बुद्धि पराक्रम बिन नृप जैसें।
मास रुधिर मल अस्थिजु चामा, तथा मृतक प्राणी लखिरामा ॥

अर जो वस्तु तजी है भाई, सो कबहू जो थाल धराई।
तौ उठि बैठे होउ पवित्रा, यह आज्ञा गावै जगमित्रा॥
दान बिना जीमा मति बीरा, इह आज्ञा धारौ उर धीरा।
बिना दान भोजन अपवित्रा, शक्तिप्रमाण दान दो चित्रा॥
मुनी अर्जिका श्रावक कोई, कै सुश्राविका उत्तम होई।
अथवा अव्रत सम्यकदृष्टी, जिह उर अमृतधारा वृष्टी॥
इनकूं महाभक्ति करि देहो, तिनके गुण हिरदामें लेहो।
अथवा दुखित भुखित नरनारी,पसु-पंखी दुखिया संसारी॥
अन्न वस्त्र जल सबकों देना, नर भव पायेका फल लेना।
तिर्यन्चनिकूं तृण हू देना, दान तणे गुण उरमे लेना॥
भोजन करत ओंठि जिन छाडौ, ओंठि खाय देही मति भाड़ौ।
काहूकूं उच्छिष्ट न देनी, यही बात हिरदै धरि लेनी॥
अन्तराय जो परैं कदापी, अथवा छीवें खलजल पापी।
तब उच्छिष्ट तजन नहिं दोषा, इह भाषे बुधजनव्रत पोषा॥
घृत दधि दूध मिठाई मेवा, जोहि रसोई माहिं जु लेवा।
सो सब तुल्य रसोई जानों, यह गुरु आज्ञा हिरदे मानों॥५०॥
जहा वापरै अन्न रसोई, तातें न्यारे राखै जोई।
जेतौ चहिये तेतौ ल्यावै, आठौ, सो बर्तनमें आवै॥
पाकावस्तुरु भोजन भाई, एक भये बाहिर नहिं जाई।
जल अर अन्न तणों पकवाना, सो भोजन ही सादृश जाना॥
असन रसोई बाहर जावै, सो बढ़वापा नाम कहावै।
मौन बिना भोजन बरज्या है,मौन सात श्रुत माहिं कह्यो है॥
भोजन भजन सनान करन्ता, मैथुन वमन मलादि करन्ता।

मूत्र करन्ता मौन जु होई, इह आज्ञा धारै बुध सोई ॥
अन्तराय अर मौन जु सप्ता, पावै श्रावक पाप अलिप्ता।
अब जलकी किरिया सुनि धर्मी,जे नहिं धारें तेहि अधर्मी ॥
नदी तीर जो होय मसाणा, सो तजि घाट जु निन्द्य बखाणा।
और घाटको पाणी आणो, इह जिन आज्ञा हिरदे जाणो ॥
लोक भरन जे निजस्या आवै, तिनके ऊपरलौ जल ल्यावै।
सरवर माहिं गावको पानी, आवै सो सरवर तजि जानी ॥
गांवथकी जो दूरि तलावा, ताको जल ल्यावौ सुभ भावा।
तजे अपावन निन्दक नीरा,अब वापीकी विधि सुनि वीरा ॥
जा माहीं न्हावै नरनारी, कपरा धावहिं दातनिकारी।
ता वापीको जल मति आनों, तहा न निर्मलताई जानों ॥
कूपतणी बिधि सुनहु प्रबीना, जहा भरें पानी कुल हीना।
तहा जाहि मनि भरवा भाई, तबै ऊंचकौ धर्म रहाई ॥६०॥
उत्तम नीच यहै मरजादा, यामे है कछहू न विवादा।
यवन अन्तिजा सबसे हीना, इनको कूप सदा तजिदीना ॥
अब तुम बात सुनो इक और, शंका छाडि बखानौ और।
धर्मरहितके पानी घरको, त्यागौ वारि अधर्मी नरको ॥
विन साधर्मी उत्तम बंसा, पर घरको छाड़ौ जल अंसा ॥

दोहा—जलके भाजन धातुके, जो होवें घर माहिं।
पूंछमाजि नित धोयवा, यामे संसै नाहिं ॥
अर जे वासण गारके, गागर घट मटकादि।
तेहि अल्पदिन राखिवौ, इह आज्ञाजु अनादि ॥
राति सुकाया वा धरा, माटी वासण बीर।

तिनमें प्रातहि छाणिवौ,आछी विधिसों नीर ॥
जौ नहिं राखै गारके, जलभाजन बुधिवान ।
राखै बासण धातु ही,सो अति ही शुचिवान ॥

चौपाई ।

इह तौ जलकी क्रिया बताई, अब सुनि जलगालन विधि भाई ।
रंगे वस्त्र नहिं छानों नीरा, पहरे वस्त्र न गालौ वीरा ॥
नाहिं पातरे कपड़े गालौ, गाढे वस्त्र छाड़ि अघ टालौ ।
रेजा दिढ आगुल छत्तीसा,—लंबा, अर चौरा चौबीसा ॥
ताको दो पुड़ता करि छानो, यही नातणाकी विधि जानों ।
जल छाणत इक बूंदहु धरती,-मति डारहु भाषें महाव्रती ॥
एक बूंदमें अगणित प्राणी, इह आज्ञा गावै जिनवाणी ।
गलना चिउंटी धरि मति दाबौ, जीयदयाको जतन धरावौ ॥७०॥
छाणे पाणी बहुते भाई, जल गलणा धोवै चिनलाई ।
जीवाणीको जतन करौ तुम, सावधान ह्वै, बिनवें क्या हम ॥
राखहु जलकी किरिया शुद्धा, तब श्रावक व्रत लहौ प्रबुद्धा ।
जा निवाणकौ ल्यावौ वारी, ताही ठौर जिवाणी डारी ॥
नदी तलाव बावडी माहीं, जलमें जल डारौ सक नाहीं ।
कूप माहिं नाखौ जु जिवाणी, तौ इति बात हिये परवाणी ॥
ऊपरसू डारौ मति भाई, दयाधर्म धारौ अधिकाई ।
भंवरकलीको डोल मङ्गावौ, ऊपर नीचे डौरि लगावौ ॥
द्वै गुण डोल जतन करि वीरा, जीवाणी पधरावौ धारा ।
छाण्या जलको इह निरधारा, थावरकाय कहैं गणधारा ॥
द्वै घटिका बीतै जो जाकों, अणछाण्याको दोष जु ताकों ।

तिक्त कषाय मेलि किय फासू,ताहि अचित्त कहैं श्रुतभासू ॥
पहर दोय बीतें जो भाई, अगणित त्रस जीवा उपजाई ।
ड्योढ़ तथा पौणा दो पहरा,आगें मनि वरतौ बुधि-गहरा ॥
भात उकाल उष्णजल जो है, सात पहर ही लीनूं सो है ।
बीतें वसू जाम जल उष्णा,त्रस भरिया इह कहै जु विष्णा ॥
विष्णु कहावें जिनवर स्वामी, सर्व बातके अन्तर यामी ।
या विधि पाणी दिवसें पीवौ, निसिकूं जल छाडौ भविजीवौ ॥
असन पान अर खादिम स्वादी,निस त्यागे बिन व्रत सब बादी ।
दया बिना नहिं व्रत जु कोई, निस भोजनमें दया न होई ॥८०॥
छाण्यूं जाय न निसको नीरा, बीण्यूं जाय न धांनहु बीरा ।
छाण बीण बिन हिंसा होवै, हिंसातैं नारक पद जोवैं ॥
अवर कथन इक सुनने योगा, सुनकर धारहु सुबुधि लोगा ।
नारिनकों लागै वड रोगा, मास मास प्रति होहि अजोगा ॥
ताकी किरिया सुनि गुणवन्ता,जा विधि भाषें श्रीभगवन्ता ।
दिवस पाच वीतें सुचि होई, पाच दिनालौं मलिन जु सोई ॥

उक्तं च श्लोक—त्रिपक्षे शुद्ध्यते सूती, रजसापंचवासर ।
अन्यशक्ता च या नारी, यावज्जीवं न शुद्ध्यते ॥

अर्थ—प्रसुता स्त्री डेढ़ महीनेमें शुद्ध होय है, रजस्वला पांच दिवस गये पवित्र होय है अर जो स्त्री परपुरुष सो रत भई सो जन्म पर्यन्त शुद्ध नाहीं, सदा अशुचि ही है ।

बेसरी छन्द

पाच दिवसलौं सगरे कामा,—तजिकर, रहिवौ एके ठामा ।
कछु धंधा करवौ नहिं जाको, भई अजोग अवस्था ताको ॥

निज भर्ताहूको नहिं देखै, नीची दृष्टि धर्मको पेखै।
दिवस पांचलौं न्हावौ उचिता, नितप्रति कपड़ा धोवौ सुचिता॥
काहूंसों सपरस नहिं करिवौ, न्यारे आसन बासन धरिवौ।
जो कबहू ताके बासनसो, छुयौ राछ अथवा हाथनसों॥
तो वह बासन ही तजि देवौ,या विधि शुद्ध जिनाज्ञा लेवौ।
अन्न वस्त्र जल आदि सबैही, ताकौ छुऔ कछु नहिं लेही॥
कोरो पीस्यौ कछु नहिं गहिवौ, ताकौ ताके ठामहिं रहिवौ।
ठौर त्याग फिरवौ न कितैही, इह जिनवरकी आज्ञा है ही॥
करवौ नाहीं असन गरिष्ठा नाहीं दिवसे शयन वरिष्ठा।
हास कुतूहल तैल फुलेला, इक दिन माहिं न गीत न हेला॥
काजल तिलक न जाको करिवौ, नाहिं बराबर मेहदी धरिवौ।
नख-केशादि सुधार न करनों, या बिधि भगवत मारग धरनों॥
और त्रियनमें मिलवौ जाकों, पंच दिवस है वर्जित ताकों।
चंडालीहूतें अति निंद्या, भाषैं जिनवर मुनिवर वंद्या॥
पंच दिवस पति ढिग नहिं जावौ,अर नहिं वाके सज्या रचावौ।
भूमिसयन है जोग्य जु ताकों, सिंगारादि न करनो जाकों॥
छट्ठे दिवस न्हाय गुणवन्ती, शुभ कपडा पहरै बुधिवन्ती।
ह्वै पवित्र पतिजुत जिन अर्चा, करवावै, धारै शुभ चर्चा॥
पूजा दान करै बिधि सेती, शुभ मारग माहीं चित देती।
निसिको अपने पति ढिग जावै, तौ उत्तम बालक उपजावै॥
सुबुधि विवेकी सुव्रत धारी, शीलवन्त सुन्दर अविकारी।
दाता सूर तपस्वी श्रुतधर, परम पुनीत पराक्रम भर नर॥
जिनवर भरत बाहुबल सगरा, रामहणू पांडव अर बिदुरा।

लव अंकुश प्रद्युम्न सरीसा, वृषभसेन गौतम स्वामीसा ॥
सेठ सुदर्शन जम्बू स्वामी, गज सुकुमार आदि गुणधामी।
पत्र होय तौ या विधिका ह्वै, अर कबहूं पुत्री हो जो ह्वै ॥
तो सुसील सौभाग्यवती अति, नेम-धरम परवीन हंसगति।
बाल सुब्रह्मचारिणी शुद्धा, ब्राह्मी सुन्दरिसी प्रतिबुद्धा ॥
चन्दनबाला अनन्तमतीसी, तथा भगवती राजमतीसी।
अथवा पतिव्रता जु पवित्रा, ह्वै सुशील सीतासी चित्रा ॥
कै सुलोचना कौशल्यासी, शिवा रुकमनी वीशल्यासी।
नीली तथा अंजना जैसी, रोहणि द्रौपद सुभद्रा तैसी ॥१००॥
अर जो कोऊ पापाचारी, पंच दिवस बीते बिन नारी।
सेवै विकल अन्ध अविवेकी, ते चंडालनिहूते एकी ॥
अतिहिं घृणा उपजै ता समये, ताते कबहु न ऐसे रमिये।
फल लागै तौ निपट हि विकला, उपजै संतति सठ बेअकला ॥
सुत जन्मे तौ कामी क्रोधी, लापर लपट धर्म विरोधी।
राजबिक बसुसे अति मूढ़ा, ग्रन्थनि माहिं अजस आरूढा ॥
सत्यघोष द्विज पर्वत दुष्टा, धवलसेठसे पाप सपुष्टा।
पुत्री जन्मे तोहि कुशीली, पर-पुरुषा-रत अति अवहीली।
राव जसाधरको पटरानी, नाम अमृतादेवि कहानि।
गई नरक छट्ठै पति मारे, किये कुब्जसो कर्म असारे ॥
रात्रि विषै कपरा ह्वै नारी, तौ इह बात हियेमे धारी।
पंच दिवसमे सो निसि नाहीं, ता बिन पंच दिवस श्रुतमाहीं ॥
इह आज्ञा धारौ तजि पापा, तब पावौ आचार निपापा।
अब सुनि गृहपतिके षट कर्मा, जो भाखैं जिनवरको धर्मा ॥

जिन पूजा अर गुरुकी सेवा, फुनि स्वाध्याय महासुख देवा।
संजम तप अर दान करौ नित, ए षट कर्म धरौ अपने चित्त॥
इन कर्मनि करि पाप जु कर्मा, नासें भविजन सुनि जिनधर्मा।
चाकी उखरी और बुहारी, चूला बहुरि परंडा धारी॥
हिंसा पाच तथा घर धंधा, इन पापनि करि पाप हि बंधा।
तिनके नासनको षट कर्मा, सुभ भाषै जिनवरको धर्मा॥ १०॥
ए सब रीति मूलगुण माहीं, भाषें श्रीगुरु संसै नाहीं।
आठ मूलगुण अंगोकारा, करौ भव्य तुम पाप निवारा॥
अर तजि सात विसन दुखकारी, पापमूल दुरगति दातारी।
जूवा आमिष मदिरादारी, आखेटक चोरी परनारी॥
जूवा सम नहिं पाप जु कोई, सब पापनिको इह गुरु होई।
जूवारीको संग जु त्यागौ, दूतकर्मके रंग न लागौ॥
पासा सारि आदि बहु खेला, सब खेलनिमें पाप हि भेला।
सकल खेल तजि जिन भजि प्रानी, जाकर होय निजातमज्ञानी।
ठौर ठौर मद मास जु निंदे, तात तजिये प्रभुको बंदे।
तज वेश्या जो रजक-शिलासम, गनिकाको घर देखहु मति तुम।
त्यागि अहेरा दुष्ट जु कर्मा, ह्वै दयाल सेवौ जिनधर्मा।
करै अहेराते जु अहेरी, लहै नर्कमें आपद ढेरी॥
क्षत्रीको इह होय न कर्मा, क्षत्रीको है उत्तम धर्मा।
क्षत् कहिये पीराको नामा, पर-पीरा हर जिनको कामा॥
क्षत्री दुर्बलको किमि मारै, क्षत्री तौ पर-पीरा टारै।
मास खाय सो क्षत्री कैसो, वह तो दुष्ट अहेरो जैसो॥
अर जु अहेरी तजै अहेरा, दयापाल ह्वै जिनमत हेरा।

तौ वह पावै उत्तमलोका, सबकों जीवदया सुखथोका ॥
त्यागौ चोरी जो सुख चाहौ, ठग विद्या तजि ल्यो भविलाहो।
परधन भूले बिसरे आयौ, राखौ मति यह जिन श्रुत गायौ ॥२०
लूटि लेहु मति काहूको धन, परधन हरबेंकों न धरौ मन।
चुगली करन, लुटावौ काकों, छाड़ों भाई अन्यरमाकों ॥
काहूकी न धरोहरि दाबौ, सूधो राखौ मित्र हिसाबो।
तौल माहिं घटि-बधि मति कारौ, इह जिन आज्ञा हिरदैधारौ।

दोहा—तजौ चोरकी संगती, तासू नहिं व्यवहार।
चोरयो माल ग्रहौ मती, जो चाहौ सुख सार ॥
परदारा सेवन तजौ, या सम दोष न और।
याकों निंदें जिनवरा जा त्रिभुवनके मौर ॥
पापी सेवें पर तिया, परे नर्कमे जाय।
तेतीसा-सागर तहा दुख देखें अधिकाय ॥
तातें माता बहन अर, पुत्री सम परनारि।
गिनो भव्य तुम भावसों, शीलवृत्त उरधारि ॥
जे जेठी ते मात सम, समवय बहन समान।
आप थकि छोटि उमरि, सोनिज सुता समान ॥
निन्दे बिसन जु सात ए, सात नरक दुखदाय।
मन-वच-तनए परिहरौ, भजौ जिनेसुर पाय ॥
इन विसननि करि बहु दुखी, भयो अनन्ते जीव।
तिनको को वर्णन करै, ए निंदे जगपीव ॥
कैयकके भाषूं भया नाम, सूत्र अनुसार।
राव युधिष्ठिर सारिखे, धर्मोत्तम अधिकार ॥२०॥

दुर्योधनके हठ थकी, एक बार ही द्यूत
रमिकर अति आपद लही, जात्यौ कौरवधूत ॥
हारि गये पांडव प्रगट, राज सम्पदा मान ।
दुखी भये जो दीन जन, ग्रन्थनि माहिं बखान ।
पीछे सब तजि जगतकों, जगदीश्वर उरध्याय ॥
श्रीजिनवरके लोककों, गये जुधिष्ठिर राय ॥
मास भखनतें बक नृपति, गये सातवें नर्क ।
तीस तीन सागर महा पायौ दुख संपर्क ॥
अमल थकी जदुनन्दना, रिषिको रिस उपजाय ।
भये भस्मभावा सबै, पाप करम फल पाय ॥
कैकय उबरे जिनजती भये मुनीसुर जेह ।
येह कथा जिन सूत्रमे, तुम परहट सुन लेह ॥
चारुदत्त इक सेठ हो, करि गनिकासों प्रीति ।
लही आपदा जिह घनी गई सम्पदा बीति ॥
ब्रह्मदत्त पापी महा, राजा हौं मृग मार ।
आखेटक र पराघतें, बूडयौ नरक मंझार ॥
चोरी करि शिवभूति शठ, लहै बहुत दुख दोष ।
ताकी कथा प्रसिद्ध है, कहिवेको सत घोष ॥
परदारा पर चित धरी, रावणसे बलवन्त ।
अपजस लहि दुरगति गये, जे प्रतिहरि गुणवन्त ॥ ४०॥
बिसन बुरे बिसनी बुरे, तजौं इनोंसे प्रीति ।
व्रत क्रियाके शत्रु ये, इनमे एक न नीति ॥
अब सुनि भैया बात इक, गुण इकवीसा जेह ।

इनहीं मूलगुणानिकों, परिवारो गनि लेह ॥
लज्जा दया प्रमासता, जिनमारग परतीति।
पर औगुनको ढाकिबो, पर उपगार सुरीति ॥
सोमदृष्टि गुणगृहणता, अर गरिष्ठता जानि।
सबसों मित्राई सदा, बैरभाव नहिं मानि ॥
पक्ष पुनीत पुमानकी, दीरघदरसी सोय।
मिष्ट बचन बोले सदा, अर बहुज्ञाता होय ॥
अति रसज्ञ धर्मज्ञ जो, है कृतज्ञ फुनि तज्ञ।
कहै तज्ञ जाकूं दुधा, जो होवै तत्वज्ञ ॥
नहीं दीनता भाव कछु नहिं अभिमान धरेय।
सबसों समता भाव है, गुणको विनो करेय ॥
पाप क्रिया सब परिहरौ, ए गुण होय इकोस।
इनकों धारे सो सुधी, लहै धर्म जगदीश ॥
इन गुण बाहिर जीव जो, श्रावक नाहिं गनेय।
श्रावक व्रतके मूलये, श्रीजिनराज कहेय ॥
श्रावक व्रत सब जातिको, जतिव्रत, द्विज, नृपवानि।
और जाति नहिं ह्वै जती, इह जिन आज्ञा जानि ॥५०॥
अर एते विणज न करे, श्रावक प्रतिमा धार।
धान पान मिष्टान्न अर, मोम हींग हरतार ॥
मादिक लवण जु तेल घृत, लोह लाख लकड़ादि।
दल फल कन्दादिक सबै, फूल फूल सीसादि ॥
चीट चावका जेवड़ा, मूंज डाभ सिण आदि।
पसु पंखी नहिं विणजवो, सावन मधु नीलादि ॥

अस्थि चर्म रोमादि मल, मिनख बेचवौ नाहिं ।
बन्दिपकड़नी नाहिं कछु, इह आज्ञा श्रुतिमाहिं ॥
पशु-भाड़े मति द्यौ भया, त्यागि शस्त्र व्यौपार ।
बध बंधन विवहार तजि जो चाहौ भवपार ॥
जहां निरन्तर अगिनिको, उपजै पापारम्भ ।
सब व्यौहार तजौ सुधी, तजौ लोभथल दम्भ ॥
कन्दोई लोहार अति, सुवर्णकार शिल्पादि ।
सिकलीगर बाटीप्रमुख, अवर लखेरा आदि ॥
छीपी रङ्गराषिका, अथवा कुम्भजुकार ।
व्रत धारि नर नहिं करे उद्यम हिंसाकार ॥
रंग्यो नीलथकी जिको, जो कपरा तजि वीर ।
अति हिंसा कर नीपनों, है अजोगि वह चीर ॥
कूप तडाग न मोखिये, करिये नहिं अनर्थ ।
हिंसक जीव न पालिये, यह धारौ श्रुति अर्थ ॥ ६० ॥
विष न विणजवौ है भला, रसा विणजके माहि ।
विणज करौ तो रतनको, कै कंचन रूपादि ॥
कै रूई कपडा तनों, मति खोवौ भवबादि ।
जिनमें हिंसा अल्प है, ते व्यापार करेय ॥
अति हिंसाके विजणजे, ते सबही तज देय ।
ए सब रीति कही बुधा, मूल गुणनिमें लीक ॥
ते धारौ सरधा करी, त्यागौ बात अलीक ।
जैसे तरुके जड गिनी, अरु मन्दिरके नींव ॥
तैसें ए सब मल गुण तप जप व्रतकी सींव ।

बेसरी छन्द ।

ए दुरगति दाता न कदेही, शिव कारण है देह विदेही ॥
सम्यक सहित महाफल दाता, सब गुननिको सम्यक ताता ।
समकितसों नहिं और जु धर्मा, सकल क्रियामें सम्यक पर्मा ॥
जाके भेद सुनो मन लाए, जाकरि आतम तत्व लखाए ।
भेद बहुत पर द्वै बड़ भेदा, निश्चै अर विवहार सुवेदा ॥
निश्चय सरधा निज आतमकी, रुचि परतीति जु अध्यातमकी
सिद्ध समान लखौ निज रूपा, अतुल अनंत अखाड अनूपा ।
अनुभव-रसमें भीग्यौ भाई, धोई मिथ्यामारग काई ।
अपनो भाव अपुनमे देखौ, परमानन्द परम रस पेखौ ॥
तीन मिथ्यात चौकड़ी पहली, तिन करि जीवनिकी मति गहली
मोह प्रकृति है अट्ठावीसा, सात प्रबल भाषैं जगदीसा ॥७०॥
सात गये सबहि नमि जावें सर्व गये केवल पद पावें ॥
उपशम क्षय-उपशम अथवा क्षय, सात तनौं कीयौ तनि सब भय
ये निश्चय समकितको रूपा, उपजै उपशम प्रथम अनूपा ॥
सुनि सम्यक व्यवहार प्रतीता, देव अठारह दोष वितीता ।
गुरु निरग्रन्थ दिगम्बर साधू, धर्म दयामय तत्व अराधू ॥
तिनकी सब दिढ़ करि धारे, कुगुरु कुदेव कुधर्म निवारे ।
सबनि तत्वको निश्चय करिबौ, यह विवहार सुसम्यक धरिबौ
जीव अजीवा आस्रव बंधा, संवर निर्जर मोक्ष प्रबन्धा ॥
पुण्य पाप मिलि नव ए होई, लखै जथारथ सम्यक सोई ॥
ये हि पदारथ नाम कहावै, एई तत्व जिनागम गावै ।
नव पदार्थमे जीव अनन्ता, जीवन माहि आप गुणवंता ॥

लखै आपकों आपहि माहीं, सो सम्यकदृष्टी शक नाहीं ।
ए दोय भेद कहे समकितके, ते धारो कारण निज हितके ॥
सम्यकदृष्टी जे गुण धारै, ते सुनि जे भव-भाव विडारै ।
अठ मद त्यागै निर्मद होई, मार्दव धर्म धरै गुन सोई ॥
राजगर्व अरु कुलको गर्वा, जाति मान बल मान जु सर्वा ।
रूप तनूं मद तपको माना, संपति अर विद्या अभिमाना ॥
ए आठो मद कबहु न धारै, जगमाया तृण-तुल्य निहारै ।
अपनी निधि लखि अतुल अनन्ती, जो पर-पंचनमे न बसंती ॥
अविनश्वर सत्ता विकसंती, ज्ञान-दृगोत्तम द्युति उलसंती ।
तामे मगन रहै अति रङ्गा, भव-माया जाने क्षण भंगा ॥
तीन मूढता दूरी नाखै, देव धर्म गुरु निश्चै राखै ।
कुगुरु कुदेव कुधर्म न पूजा, जैन बिना मत गहै न दूजा ॥
छह जु अनायतनी बुधि त्यागै,त्याग मिथ्यामत जिनमत लागै ।
कुगुरु कुदेव कुधर्म बडाई, अर उनके दासनिकी भाई ॥
कबहुं करै नहिं सम्यकदृष्टी, जे करिहैं ते मिथ्यादृष्टी ।
शंका आदि आठ मल भाडै, करि परपञ्च न आयो छाडै ॥
जिनवचमें शंका नहिं ल्यावै, जिनवाणी उर धरि दिढ़ भावै ।
जगकी वाछा सब छिटकावै, निसप्रह भाव अचल ठहरावै ॥
जिनके अशुभ उदै दुख पीरा, तिनकी पीर हरै वर बीरा ।
नाहिं गलानि धरै मन माहीं, साची दृष्टि धरै शक नाहीं ॥
कबहूं परको दोष न भाखै, पर उपगार दृष्टि नित राखै ।
अपनों अथवा परको चित्ता, चल्यौ देखि थांमै गुणरत्ता ॥
थिरीकरण समकितको अंगा, धारै समकित धार अभङ्गा ।

जिन धर्मीसूं अति हित राखे, सो जिनमारग अमृत चाखे ॥
तुरत जात बछरा परि जैसे, गाय जीव देय है तैसे।
साधर्मी परि तन धन वारे, गुनवतसल्य धरै अघ टारै ॥
मन वच काय करै वह ज्ञानी, जिनदासनिको दासा जानी।
जिनमारगकी करै प्रभावन, भावै ज्ञानी चउविधि भावन ॥६०॥
सब जीवनिमें मैत्रीभावा, गुणवंतनिकूं लखि हरसावा।
दुखी देखि करुणा उर आनें, लखि वापराता राग न छानें ॥
दोषहु नाहीं है मध्यस्था, ए चउ भावन भावे स्वस्था।
जिनचैत्याले चैत्य करावै, पूजा अर परतिष्ठा भावे ॥
तीरथजात्रा सूत्र जु भक्ती, चउविधि संघसेव है युक्ती।
ए है सप्त क्षेत्र परिसिद्धा, इनमे खरचै धन प्रतिबुद्धा ॥
जीरण चैत्यालयकी मरमती,—करवावै, पुस्तककी प्रति।
साधर्मीकूं बहु धन देवे, या विधि परभावन गुन लेवे ॥
कहे अङ्ग ए अष्ट प्रतक्षा, नहि धरवौ सोई मल लक्षा।
इन अङ्गनि करि सीझे प्रानी, तिनको सुजस करै जिनवानी ॥
जीव अनन्त भये भवपारा, कौलग कहिंगे नाम अपारा।
केयकके शुभ नाम बखानों, श्रुत अनुसार हिएमे आनो ॥
अंजन और अनंतमती जो, राव उदायन कर्म हतीजो।
रेवति राणी धर्म-गढासा, सेठ जिनेन्द्रभक्त अघ नासा ॥
पर औगुन ढाके जिह भाई, जिनवरकी आज्ञा उर लाई।
वारिषेण ओ विष्णुकुमारा, वज्रकुमार भवादधि तारा ॥
अष्ट अङ्ग करि अष्ट प्रसिद्धा, और बहुत हुए नर सिद्धा।
आठ मद त्यागि अष्ट मल त्यागा, तीन मूढ़ता त्यागि सभागा ॥

षट जु अनायतनाको तजिवौ, ए पचास महागुण भजिवौ।
अर तजिवौ तिनकूं भय सप्ता, निरभै रहिवौ दोष अलिप्ता ॥१००
इह भव पर भवको भय नाहीं मरण वेदना भय न धराहीं।
हमरौ रक्षक कोऊ नाहीं, इह संसै नाहीं घट माहीं॥
सबको रक्षक आयु जु कर्मा, कै जिनवर जिनवरको धर्मा।
और न रक्षक कोई काकों, इह गुरु गायौ गाढ जु ताकों॥
अर नहिं चोर तनो भय जाकों, अपनो निजधन पायौ ताकों।
चिद्घन धन चोरयौ नहिं जावे, तातें चित्त अडोल रहावे॥
अर नहिं अकस्मात भय कोई, जिन सम लखियौ निज तन ओई।
चेतन तत्त्व लख्यौ अविनासी, ताते ज्ञानी है सुखरासी॥
काहूको भय तिनकों नाहीं, भय रहिता निरवैर रहाहीं।
सप्त भया त्यागे गुण होई, सप्त विसन तजियो शुभ जोई॥
सप्त सप्त मिलि चौदा गुन ए, मिले पचीसा गुणता जु लए।
पञ्च अतीचारनकों टारौ, शंका कांक्षा कबहू न धारौ॥
नहिं दुरगंछा भाव करैही, नहिं मिथ्यात सराह करैही।
नहीं स्तवन मिथ्यादृष्टीको, यह लक्षण सम्यकदृष्टीको॥
पञ्च अतीचारनकूं त्यागा, सो ह्वै पञ्च गुणा बडभागा।
मिलि गुणताली चौवालीसा, गुणा होंहि भाषें जगदीसा॥
इनकूं धारै सम्यकती सो, भवभय तजि पावे मुक्ती सो।
ए गुन मिथ्यातीके नाहीं, आतमज्ञान न मिथ्या माहीं॥

उक्तञ्च गाथा।

मयमूढमणायदणं, संकाइवसण्णभयमईयारं।
एसिं चउदालेदे, ण संति ते हुंति सद्दिट्ठी॥ ११०॥

अर्थ—जिनके अष्ट मद नाहीं, तीन मूढता नाहीं, षट अनाय तननाहीं, शंकादि अष्ट मल नाहीं, सप्त व्यसन नाहीं, सप्त भय नाहीं, पंच अतीचार नाहीं,ए चवालीस नाहीं ते सम्यक दृष्टी कहे।

दोहा—व्रतके मल जु मल गुण, सम्यक सबको मूल।
कह्यौ मूलगुणको सुजस, सुनिव्रत विधि अनुकूल।

इति क्रियाकोशे मूलगुणनिरूपण।

बारह व्रत वर्णन

दोहा—द्वादस व्रतनिकी सुविधि, जा विधि भाषी वीर।
सो भाषो जिनगुन जपी, जे धारें ते धीर॥
द्वादस व्रत माहे प्रथम, पंच अणुव्रतसार।
तीन अणुव्रत चारि फुनि, शिक्षावृत्त आचार।
हिंसा मृषा अदलधन, मैथुन परिग्रह साज।
एक देश त्यागी गृही, सब त्यागी रिषिराज॥
सब व्रत्तनिके आदिही, जीवदया-व्रतसार।
दया सारिसौ लोकमें, नहिं दूजौ उपगार॥
सिद्ध समान लख्यौ जिनें, निश्चय आतमराम।
सकल आतमा आपसे, लखै चेतना-धाम॥
ते सब जीवनकी दया, करें विवेकी जीव।
मन वच तन करि सर्वको, शुभ वाछे जु सदीव॥
सुखसो जीवौ जीव सहु, क्लेश कष्ट मति होइ।
तजौ पापको सर्वही, तजौ परस्पर द्रोह॥
काहूको हु पराभवा, कबहु करौ मति कोइ।

इह हमरी बाछा फलौ, सुख पावौ सहु लोइ ॥
सबके हितकी भावना राखै परम दयाल ।
दयाधर्म उरमें धरो, पावै पद जु विशाल ॥
थावर पंच प्रकारके, चउविधि त्रस परवानि ।
सबसों मैत्री भावना, सो करुणा उर आनि ॥ १०॥
प्रथीकाय जलकायका, अगनिकाय अर वाय ।
काय बहुरि है वनस्पति, ए थावर अधिकाय ॥
वे इन्द्री ते इन्द्रिया, चउ इन्द्रिय पंचेन्द्रि ।
ए त्रस जीवा जानिये, भाषे साधु जिनेन्द्रि ॥
कृत-कारित-अनुमोद करि, धरै अहिंसा जेह ।
ते निर्वाण पुरी लहै, चउ गति पाणी देह ॥
निरारम्भ मुनिकी दशा, तहा न हिंसा लेस ।
छह्‌ काय पीराइरा, मुनिवर रहित कलेश ॥
गृहपतिके गृहजोगतें, कछु आरम्भ जु होइ ।
तातें थावरकाय को, दोष लगै अघ सोइ ॥
पै न करे त्रस घात वह मन वच तन करि धीर ।
त्रस काननको पीहरा जाने परकी पीर ॥
बिना प्रयोजन वह बुधी, थावर हू पे रैन ।
जो निशंक थावर हनें जिनके जिन नीरैन ॥
हिंसाको फल दुरगती, दया सुर्ग-सुख देइ ।
पहुंचावै फुनि शिवपुरे, अविनाशी जु करेइ ॥
दया मूल जिन धर्मको, दया समान न और ।
एक अहिन्सा व्रत्त ही, सब व्रत्तनिको मौर ॥

यमनियमादिक बहुत जे, भाषें श्रीजिनराय।
ते सहु करुणा कारणें, और न कोइ उपाय ॥२०॥
बिना जैन मत यह दया, दूजे मत दीखै न।
दया मई जिनदास है, हिंसा बिधि सीखै न ॥
दया दया सब कोउ कहै, मर्म न जाने मूर।
अणछान्यूं पाणी पिवै, तेहि दयातें दूर ॥
दया भली सबही रटै, भेद न पावै कोय।
बरतै अणगाल्यौ उदक, दया कहा ते होय ॥
दया बिना करणी वृथा यह भाषें सब लोक।
न्हावै अणगाले जलहि बाधै अघके थोक ॥
छाण्यूं जल घटिका जुगल पाछें अगल्यौ होय।
बिना जैन यह बारता और न जाने कोय ॥
दया समान न धर्म कोउ इह गावे नरनारि।
निशा माहि भोजन करें, जाहि जमारो हारि ॥
दया जहां ही धर्म है, इह जाने संसार।
पै नहिं पावै भेदकों, भक्ष अभक्ष विचार ॥
दया बडी सब जगतमे, धारै नाहिं तथापि।
परदारा परधन हरै परै नरकमें पापि ॥
दया होय तौ धर्म ह्वै, प्रगट बात है एह।
तजै न तौहू द्रौह पर, धरै न धर्म सनेह ॥
व्रत करै फुनि मूढधी, अन्न त्यागि फल खाय।
कंद मूलभक्षण करै, सो व्रत निह फल जाय ॥३०॥
दया धर्म कीजे सदा, इह जंपैं जग सर्व।

नहिं तथापि सब सम गिने, हने न आठूं गर्व ॥
परम धरम है यह दया, कथै सकल जन एह ।
चुगली-चाटी नहिं तजै, दया कहाते लेह ॥
दया व्रतके कारणें, जे न तजें आरम्भ ।
तिनके करुणा होय नहिं, इह भाषें परब्रह्म ॥
दया धर्मको छाड़िकै, जे पशुघात करेय ।
ते भव भव पीडा लहै, मिथ्या मारग सेय ॥
दया बतावें सब मता, समझ न काहू माहिं ।
धर्म गिने हिंसा विषें, जतन जीवको नाहिं ॥
दया नहीं परमत विषे, दया जैनमत माहिं ।
बिना फैन यह जैन है यामें संषय नाहिं ॥
दया न मिथ्या मत विषे, कही कहा है वीर ।
करुणा सम्यक भाव है,यह निश्चय धरि धीर ॥
काहेके वे देवता, करें जु मास अहार ।
ते चिंडाल बखानिये, तथा श्वान मंजार ॥
देवनिको आहार है—अमृत और न कोय ।
मासासी देवानिकूं, कहै सु मूरखि होय ॥
मंगल कारण जे जड़ा जीवनिको जु निपात ।
करें अमङ्गल ते लहैं होय महा उतपात ॥४०॥
जे अपने जीवे निमित, करें औरको नास ।
ते लहि कुमरण बेगही, गहे नरकको वास ॥
मद्य मास मधु खाय करि, जे बांधे अघकर्म ।
ते काहेके मिनख हैं, इह भाखै जिनधर्म ॥

कंदमूल फल खाय करि, करै जु वनको वास।
तिनको वनवासो वृथा, होय दयाको नास॥
बिना दया तप है कुतप,जाकरि कर्म न जाय।
हिंसक मिथ्यामत धरा नरक निगोद लहाय॥
जैसो अपनों आतमा, तैसे सबही जीव।
यह लखि करुणा आदरौ भाखें त्रिभुवन पीव॥

छन्द जोगीरासा

काहेके ते तापस दुष्टा, करुणा नाहिं धरावें।
कर अपनी आरम्भ सपष्टा, जीव अनेक जरावें॥
ते तजि कपडा तपके कारण, धारें शठमति चर्मा।
ते न तपस्वी भवदधि तारण, बाधें अशुभ जु कर्मा॥
रिषि तौ ते जे जिनवर भक्ता,नगन दिगम्बर साधा।
भव तनु भोगयकी जु विरक्ता, करै न थिर चर बाधा॥
मैत्री मुदिता करुणा भावा, अर मध्यस्थ जु धारै।
राग दोष मोहादि अभावा, ते भवसागर तारै॥
बिना दया नहिं मुनिव्रत होई,दया बिना न गृही है।
उभय धर्मको सरवस करुणा,जा बिन धर्म नहीं है॥
दया करौ मुखतें सब भाखें भेद न पावें पूरा।
बासी भोजन भखि करि भोंदू रहे धर्मतें दूरा॥
बासी भोजन माहिं जीव बहु, भखें दया नहिं होई।
दया बिना नहिं धर्म न व्रत्ता, पावें दुरगति सोई॥
अत्थाणा संधाण मथाणा, कांजी आदि अहारा।
करें विवेक बाहिरा कुबुधी, तिनके दया न धारा॥

मासासीके घरको भोजन करें कुमतिके धारी ।
तिनके घट करुणा कहु कैसें, कहा शोध आचारी ॥
तातौ पाणी आठ हि पहरा, आगें त्रस उपजाहीं ।
ताकी तिनकों सुधि बुधि नाहीं, दया कहां तिनमाहीं ॥
निसिको पीस्यौनिसिको राध्यौ बींधौ सीधौ खावे ।
हरितकाय राधी सब स्वादै, दया कहातें पावे ॥
चर्म-पतित घृत तेल जलादिक, तिनमें दोष न माने ।
गिनें न दोष हींगमें मूढा, दया कहातें आनें ॥
हाटें बिकते चून मिठाई, कहे तिनें निरदोषा ।
भखे अजोगि अहार सबैही दया कहातें पोषा ॥
दूध दही अरु छाछि नीरको, जिनके कछु न विचारा ।
दया कहां है तिनके भाई, नहीं शुद्ध आचारा ॥
सूग नहीं मलमूत्रादिककी, ढोर समाना तेई ।
तिनकूं जे नर जैनी जाने, ते नहिं शुभमति लेई ॥
बाधक जिन शासन सरधाके, साधकता कछु नाहीं ।
साधु गिनें तिनकूं जे कोई, ते मूरख जग माहीं ॥
एक बारको नियम न कोई, बार बार जलपाना ।
बार बार भोजनको करिवौ, तिनके व्रत्त न जाना ॥
त्रसकायाको दूषण जामे, सो नहिं प्रासुक कोई ।
भखै असूत्री शठमति जोई, नाहिं व्रतधर होई ॥
दयाधर्मको परकाशक है, जिन मन्दिर जग माहीं ।
ताहि न पूजें पापी जीवा, तिनके समकित नाहीं ॥
कारण आतम ध्यान तणीं है, श्रीजिनप्रतिमा शुद्धा ।

ताहि न बन्दें निन्द जु तेई, जानहु महा अबुद्धा॥
बूडें नरक मंझार महा शठ, जे जिन प्रतिमा निंदें।
जाहिं निगोद विवेक-वितीता जे जनगृह नहिं वंदें।
अज्ञानी मिथ्याती मूढा, नहीं दयाको लेशा।
दयावन्त तिनकूं जे भाषें, ते न लहे निजदेशा॥

दोहा—सुर नर नारक पशुगती, ए चारो परदेश।
पंचमगति निज देश है, यामे भ्राति न लेश॥
पंचम गतिको कारणा, जीवदया जग माहिं।
दया सारिखौ लोकमे, और दूसरौ नाहिं॥
दया दोय विधि है भया, स्व-पर दया श्रुति माहिं।
सो धारौ दृढ चितमें, जाकरि भव-भ्रम जाहिं॥
स्वदया कहिये सो सुधी, रागादिक अरि जेह।
हनें जीवकी शुद्धता, टारि तिन्हे शिव लेह॥६०॥
प्रगट करै निज सुद्धता, रागादिक मदमोरि।
निज आतम रक्षा करे, डारै कर्म जु तोरि॥
सो स्वदया भाषे गुरु, हरै कर्म—बिस्तार।
निज हि बचावै कालते, करै जीव निस्तार॥
षट कायाके जीव सहु, तिनत हेत रहाय।
वैरभाव नहिं कोयसूं, सो पर दया कहाय॥
दया मात सब जगतकी, दया धर्मको मूल।
दया उधारै जगततें, हरै जीवकी भूल॥
दया सुगुनकी वेलरी, दया सुखनकी खान।
जीव अनन्ता सीजिया, दयाभाव उर आन॥

स्व-पर दया दो विधि कही, जिनवाणीमें सार ।
दयावन्त जे जीव हैं, ते पावें भवपार ॥

सवैया इकतीसा ।

सुकृतकी खानि इन्द्रपुरीकी नसैनी जानि,
पापरज खंडनको पौनरासि पेखिये ।
भवदुख-पावक बुझायवेकूं मेघमाला,
कमला मिलायवेकों दूती ज्यूं विसेखिये ॥
मुकति-बधूसों प्रीति पालिवेको आली सम,
कुगतिके द्वार दिढ़ आगलसी देखिये ।
ऐसी दया कीजे चित्त तिहू लोक प्राणी हित,
और करतूति काहू लेखेमे न लेखिये ॥

दोहा—जो कबहूं पाषाण जल, माहिं तिरै अरभान ।
ऊगै पश्चिमकी तरफ, दैवयोग परवान ॥
शीतल गुन ह्वै अगनिमें, धरा पीठ उलटेय ।
तौहू हिंसाकर्मतें, नाहीं शुभमति लेय ॥
जो चाहै हिंसा करी, धर्म मुकतिको मूल ।
सो अगनीसूं कमलवन, अभिलाषै मतिभूल ॥७०॥
प्राणघात करि जो कुधा, बाछै अपनी वृद्धि ।
सो सूरजके अस्ततें, चाहे वासर शुद्धि ॥
जो चाहै व्रत-धर्मको, करै जीवको नास ।
सो शठ अहिके वदनतेः, करै सुधाकी आस ॥
धर्मबुद्धि करि जो अबुध, हनै आपसे जीव ।
सो विवाद करि अस चहै, जल-मंथनतें घीव ॥

जैसें कुमती नर महा, कालकूटकूं पीय।
जीवौ चाहै जीव हति, तैसें श्रेय स्वकीय ॥
करि अजीर्ण दुरबुद्धि जो, इच्छै रोग-निवृत्ति।
तैसें शठ परघात करि, चाहै धर्म प्रवृत्ति ॥
दयाथकी इह भव सुखी, परभव सब सुख होय।
सुरग मुकति दायक दया,—धारै उधरै सोय ॥
इंद नरिन्द फणिन्द अर, चंद सूर अहमिंद।
दयाथकी इह पद लहै होवै देव जिणे द ॥
भव सागरके पार ह्वै, पहुचै पुर निर्वान।
दया तणों फल मुख्य सो, भाषें श्रीभगवान ॥
हिंसा करिकै राजसुत, सुबल नाम मतिहीन।
इह भव पर भव दुख लहै, हिंसा तजौ प्रवीन ॥
चौदसिके इक दिवसकी, दया धारि चिंडार।
इह भव नृप पूजित भयौ, लह्यौ सुरग सुख सार ॥८०॥
जे सीझे जे सीझि है, ते सब करुणा धार।
जे बूढे जे बूढ़ि है, ते सब हिंसाकार ॥
अतीचार तजि व्रत भजि करुणा तिनतें जाय।
बध बंधन छेदन बहुरि, बोझ धरन अधिकाय ॥
अन्न पानको रोकिबौ, अतीचार ए पंच।
त्यागौ करुणा धारिके इनमें दया न रंच ॥
हिंसा तुल्य न पाप है, दया समान न धर्म।
हिंसक बूडै नरकमे, बांधै अशुभ जु कर्म ॥
हुती धनश्री पापिनी, बणिकनारि विभचारि।

गई नरकमे पुत्र हति, मानुष जन्म विगारि ॥
हिंसाके अपराधतें, पापी जीव अनन्त ।
गये नरक पाये दुखा, कहत न आवे अन्त ॥
जे निकसे भव कूपते, ते करुणा उर धार ।
जे बूडे भव कूपमे ते सब हिंसाकार ॥
महिमा जीव दया यनी, जानें श्रीजगदीश ।
गण धरहू कथि ना सकें,जे चउ ज्ञान अधीश ॥
कहि न सके इन्द्रादिका, कहि न सकें अहमिंद्र ।
कहि न सके लोकातिका, कहि न सके जोगिन्द्र ॥
कहि न सकें पातालपति. अगणित जीभ बनाय ।
सो महिमा करुणा तणी हम पै बरनिन जाय ॥६०॥
दया मातको आसरो, और सहाय न कोय ।
करि प्रणाम करुणा व्रतें, भाषो सत्य जु सोय ॥

इति दयाव्रत निरूपण ।

हिंसा है परमादतें, अर प्रमादतें झूंठ ।
तातें तजौ प्रमादकूं, देय पापसों पूठ ॥

चौपाई—श्री पुरुषारथ सिद्धि उपाय, ग्रन्थ सुन्या सब पाप लुभाय ।
जहं द्वादस व्रत कहे अनूप, सम दम यम नियमादि स्वरूप ॥
सम जु कहावे समता भाव, सम्यकरूप भवोदधि नाव ।
दम कम मन इन्द्रिय रोध, जाकर लहिये केवल बोध ॥
आवो जीव वरत यम कह्यो, अवधिरूपसों नियम जु लह्यो ।
ऐसे भेद जिनागम कहै, निकठ भव्य हूं सो ही गहै ॥
तामें सत्य कह्यौ चउ भेद, सो सुनि करि तुम धरहु अछेद ।

चउविधि झूंठ तनों परिहार सो है सत्य महागुणसार ॥
प्रथम असत्य तजौ बुध कहै, वस्तु छतीकूं अछती कहै।
दूजे अछतीकों जो छती, भाषै अविवेकी हतमती ॥
तीजे कहै और सों और, बिरथा मूढ़ करै झकझोर।
चौथे झूठ तनें त्रय भेद, गर्हित सावद प्रीन उछेद ॥
ए सब कृत कारित, अनुमंत, मन वच तन करि तज गुनवंत।
चुगला-चाटी परकी हासि, कर्कश वचन महा दुखराशि ॥
विपरीत न भाषौ बुधिवान सबद तजौ अन्याय सुमान।
बचन प्रलाप विलाप न बोलि, भजि जिन नायक तजि सहुभोलि
भाषौ मत उतसूत्र कदेह, मिथ्यातमसों तजौ सनेह।
ये सब गर्हित बचन तजेह, जिनसासनकी सरधा लेह ॥
बहुरि सबै सावद्य अजोग, बचन न बोलौ सुवुधी लोग।
छेदन भेदन मारण आदि, त्यागौ अशुभ बचन इत्यादि ॥
चोरी जोरी डाका दौर, ग उपदेश पाप सिरमौर।
हिंसा मृषा कुशील विकार, पाप बचन त्यागौ व्रतधार ॥
खेती विणज विवाह जुआदि, वचन न बोलै वृती अनादि।
तजहु दोषजुत बानी भया, बोलहु जामे उपजै दया ॥
ए सावद्य वचन तजि धीर, तजि अप्रीति वचन वर वीर।
अरति करन भय करन न बोल, शोक करन त्यागौ तजि भोल
कलह करन अघ करन तजेह वैर करन वाणी न भजेह।
ताप करन अर पाप प्रधान, त्यागौ वचन महा मतिवान ॥
मर्मछेदको बचन न कहौ, जो अपने जियको शुभ चहौ।
इत्यादिक जे अप्रिय बैन, त्यागहु सुन करि मारग जैन ॥

बोलौ हित मित बानी सदा, संसय कानि बोलि न कदा ।
सत्य प्रशस्त दया–रस भरी, पर उपगार करन शुभ करी ।।
अविरुध अव्याकुलता लिये, बोलहु करुणा धरिकै हिये ।
कबहु ग्रामणी बचन न लपौ, सदा सर्वदा श्रीजिन जपौ ।।
अपनी महिमा कबहु न करौ, महिमा जिनवरकी उर धरौ ।
जो शठ अपनी कीरति करै, सो मिथ्यात सरूपजु धरै ।। १०।।
निन्दा परकी त्यागहु भया, जो चाहौ जिनमारग लया ।
अपनी निन्दा गहरी करौ, श्रीगुरुपै तप व्रत आदरौ ।।
पापनिको प्रायश्चित्त लेह, माया मच्छर मान तजेह ।
होवै जहा धर्मको लोप, शुभ किरिया होवै फुनि गोप ।।
अर्थ शास्त्रको ह्वै विपरीत, मिथ्यातमकी ह्वै परतीति ।
तहां छाडि शंका प्रतिबुद्ध, भाषै सूत्र बचन अविरुद्ध ।।
इनमें शंका कबहुन करहू, यही बुद्धि निश्चय उर धरहू ।
सत्य मूल यह आगम जैन, जैनी बोले अमृत बैन ।।
चार्वाक बोधा विपरीत, तिनके नाहिं सत्य परतीति ।
कौलिक पातालिक जे जानि, इनमें सत्य लेश मति मानि ।।
सत्य समान न धर्म जुकोय, बडो धर्म इह सत्य जु होय ।
सत्यथकी पावै भव पार, सत्यरूप जिन मारग सार ।।
सत्य प्रभाव शत्रु ह्वै मित्र, सत्य समान न और पवित्र ।
सत्य प्रसाद अगनि ह्वै शीत, सत्य प्रसाद होय जगजीत ।।
सत्य प्रभाव भृत्य ह्वै राव, जल ह्वै थल धरिया सत भाव ।
सुर ह्वै किंकर वनपुर होय, गिरि ह्वै घर सम सतकरि जोय ।।
सर्प माल ह्वै हरि मृग रूप, बिल सम ह्वै पाताल विरूप ।

कोऊ करै शस्त्रकी घात, शस्त्र होई सो अंबुज पात ॥
हाथी दुष्ट होय सब स्याल, विष ह्वै अमृतरूप रसाल ।
कठिन सुगम ह्वै सत्य प्रभाव, दानव दीन होय निरदाव ॥२०॥
सत्य प्रभाव लहै निज ज्ञान, सत्य धरै पावै वर ध्यान ।
सत्य प्रसाद होय निरवाण, सत्य बिना न पुरुष परवाण ॥
सत्य प्रसाद वणिक धन देव, राजा करि पाई बहु सेव ।
इह भव पर भव सुखमय भयौ, जाको पाप करम सब गयौ ।
झूठ थकी वसु राजा आदि, पर्वत विप्र सत्यघोषादि ।
जग देवादिक वाणिज घने, गये दुरगति जाय न गिनें ॥
सत्य दयाको रूप न होय, दया बिना नहिं सत्यजु होय ।
सत्य तने द्वय भेद अछेद, विवहारो निश्चय निरखेद ॥
निश्चै सत्य निजातम बोध, विवहारो जिन बचन प्रबोध ।
सत्य बिना सब व्रत नप बादि, सत्य सकल सूत्रनमे आदि ॥
सत्य प्रतिज्ञा बिन यह जीव, दुरगति लहै कहे जगपीव ।
सूकर कूकर वृक चडार, घूघू स्याल काग मार्जार ॥
नाग आदि जो जीव विरूप, लापर सबते निर्दय रूप ।
सबतें बुरा महा असपर्म, लापरका लखिये नहिं दर्श ॥
चुगली-साचहु झूठहि जानि, चुगल महा चंडाल समान ।
चुगली उगलि मुखते जबै, इह भवपर भव खोये तबै ॥
सत्य हेत धारौ भवि मौन, सत्य बिना सब संजम गौन ।
थोरा कालहु कारण सत्य, मन वच तन करि तजौ असत्य ॥
मुनिके सत्य महाव्रत होय, गृहिके सत्य अणुव्रत होय ।
मुनिके सत्य गहैं के जैन,—बचन निरूपें अमृत बैन ॥३०॥

लौकिक वचन कहैं नहिं साधु, सब जीवनिके मित्र अगाध।
मृषावाद नहिं बोले रती, सो जिनमारग साचे जती॥
श्रावककों किंचित आरम्भ, त्यागे कुविसन पापारम्भ।
लौकिक वचन कहन जो परै, तौ फिर पाप वचन परिहरै॥
पर उपगार दयाके हेत, कबहुंक किंचित झूठहु लेत।
जेतौ आटे माहे लोन, ते तौ बोले अथवा मौन॥
झूठ थकी उबरैं पर प्रान, तौ वह सत्य झूठ परमान।
अपने मतलब कारिज झूठ, कबहु न बोलै अमृत बूठ॥
प्राण तजै पर सत्य न तजै, यद्वा तद्वा वचन न भजै।
यहै देह अर भोगुपभोग, सब ही झूठ गिनें जग रोप॥
परिगृहकी तृष्णा नहिं करै, करि प्रमाण लालच परिहरै।
बाप झूठको है यह लोभ, याहि तजै पावै व्रत शोभ॥
सत्य प्रभाव सुजस अति बधै, सत्य धरै जिन आज्ञा सधै।
राजद्वार पंचायति माहि, सत्यवन्त पूजत सक नाहिं॥
इन्द्र चन्द्र रवि सुर धरणेंद्र, सत्य बचे अहमिन्द्र मणिन्द्र।
करे प्रसंसा उत्तम जानि, इहे सत्य शिवदायक मानि॥
दया सत्यमें रञ्च न भेद, ए दोऊ इकरूप अभेद।
विपति हरन सुखकरन अपार, याहि धरें तें ह्वै भवपार॥
याहि प्रसंसें श्रीजिनराय, सत्य समान न और कहाय।
भुक्ति मुक्ति दाता यह धर्म, सत्य विना सब गनिये भर्म॥४०॥
अतीचार पाचों तजि सखा, जातें जिन वच अमृत चखा।
तजि मिथ्योपदेश मतिवान, भजि तन मन करि श्रीभगवान॥
देहि मूढ़ मिथ्याउपदेश, तिनमें नाहिं सुगतिको लेश।

बहुरि तजौ जु रहो म्याख्यान,ताको व्यक्त सुनो व्याख्यान ॥
गुपत बारता परको कोइ, मति परकासौ मरमी होइ ।
कूट कुलेख क्रिया तजि वीर, कपट कालिमा त्यागहु धीर ॥
करि न्यासापहार परिहार, ताको भेद सुनूं व्रतधार ।
पेलो आय धरौहरि धरै, अर कबहु विसरन वह करै ॥
तौ वाकों चित एम जु भया, देहु परायो माल जु लया ।
भूलिर थोरो मागै वहै, तौ वाको समझायर कहै ॥
तुमरो देनो इतनों ठीक, अलप बतावन बात अलीक ।
ले जावौ तुमरो यह माल, लेखामे चूकौ मति लाल ॥
घटि देवेको जो परणाम, सा न्यासापहार दुख धाम ।
अथवा धरी पराई वस्तु, जाकी बुद्धि भई विध्वस्त ॥
और ठौरकी और जु ठौर, करै सोइ पापनि सिरमौर ।
पुन साकारमंत्र है भेद, तजौ सुबुद्धी सुनि जिनयेद ॥
दुष्ट जीव परको आकार, लखना रहै दुष्टताकार ।
लखि करि जानै परको भेद, सो पावै भव बनमें खेद ॥
परमंत्रिनको करइ विकाश, सो खल लहै नरकको वास ।
जो परद्रोह धरै चितमाहिं,इह भव दुखलहि नरकहिं जाहिं ॥५०॥
अतीचार ए पाचों त्यागि, सत्य धरमके मारग लागि ।
परदारा परद्रव्य समान, और न दोष कहे भगवान् ॥
परद्रोह सो पाप न और, निधौ श्रुतमें ठौर जु ठौर ।
जिन जान्यूं निज आतमराम,तिनके परधन सों नहिंकाम ॥
सत्य कहें चोरी पर नारि,—त्यागी जाइ यहै उरधारि ।
झूंठ बकें तें जैनी नाहिं, परधन हरन न या मत माहिं ॥

दोहा—सत्यप्रभावै धर्मसुत, गये मोक्ष गुणकोश ।
लहे झूठ अर कपटतें, दुर्जोधन दुख दोष ॥
जे सुरझें ते सत्य करि, और न मारग कोय ।
जे उरझें ते झूंठ करि, यह निश्चै उर लोय ॥
सत्यरूप जिनदेव है, सत्यरूप जिनधर्म ।
सत्यरूप निर्ग्रन्थ गुरु, सत्य समान न पर्म ॥
सत्यारथ आतम धरम, सत्यरूप निर्वाण ।
सत्यरूप तप संयमा, सत्य सदा परवाण ॥
महिमा सत्य सुव्रत्तकी, कहि न सकें मुनिराय ।
सत्य वचन परभावतें, सेवें सुरनर पाय ॥
जैसो जस है सत्यको, तैसौ श्रीजिनराय ।
जानें केवल ज्ञानमे, परमरूप सुखदाय ॥
और न पूरण लखि सकें, कीरति सुर नरनाग ।
या व्रतकूं धारें सदा, तेहि पुरुष बडभाग ॥६०॥
नमस्कार या व्रत्तको, जो व्रत शिव-सुख देय ।
अर याके धारीनको, जे जिनशरण गहेय ॥
दया सत्यकों कर प्रणति, भाषा तीजों व्रत्त ।
जो इन द्वय बिन ना हुवै, चोरी त्याग प्रवृत्त ॥

छन्द चाल ।

चोरी छाडौ बड भाई, चोरी है अति दुखदाई ।
चोरी अपजस उपजावै, चोरीतें जस नहिं पावै ॥
चोरीतें गुणगण नाशा, चोरी दुर्बुद्धी प्रकाशा ।
चोरीतें धर्म नशावै, इह आज्ञा श्रीगुरु गावै ॥

चोरीसों माता ताता, त्याग लखि अपनो घाता ।
चोरीसे भाई-बँधा, कबहुं न राखै संबन्धा ॥
चोरी तें नारि न नीरै, चोरीतें पुत्र न तीरै ।
चोरी तें मित्र बिडारै, चोरी सों स्वामि न धारै ॥
चोरी सो ख्याति न पाती, चोरीसों कबहु न साती ।
चोरी तें राजा दण्डै चोरी ते सीस बिहंडै ॥
चोरी तें कुमरण होई, चोरीमे सिद्धि न कोई ।
चोरी तें नरक निवासा, चोरी तें कष्ट प्रकाशा ॥
चोरी तें लहै निगोदी, चोरी तें जोनि जु बोदी ।
चोरीमे सुमति न आवै, चोरीतें सुगति न पावै ॥
चोरी तें नासे करुणा, चोरीमें सत्य न धरणा ।
चोरी तें शील पलाई, चोरीमे लोभ धराई ॥७०॥
चोरी तें पाप न छूटै, चोरी नें तलवर कूटै ।
चोरी तें ईजति भगा, त्यागा चारनिको संगा ॥
चोरी करि दोष उपावै, चोरी करि मोक्ष न पावै ।
चोरीको भेद अनेका, त्यागौ सब धारि विवेका ॥
परको धन भूले-बिसरे, राखौ मति ज्यो गुण पसरे ।
परको धन गिरियो परियो, दाबौ मति कबहु न धरियौ ॥
तोला घटिबधि जिन राखै, बोलौ मति कूडी साखै ।
कबहू जिन ऐंडा देहो, डाका दे धन मति लेहो ॥
मति दगड़ा लूटौ भाई, दौडाई है दुखदाई ।
ठगविद्या त्यागौ मित्रा, परधन है अति अपवित्रा ॥
काहूकूं द्यो मति तापा, छाड़ौ तन मन वच पापा ।

पासीगर सम नहिं पापी, पर प्राण हरै संतापी ॥
सो महानरकमे जावे, भव-भवमें अति दुख पावे।
हाकिम ह्वै धन मति चोरौ, ले सूंक न्याव मति बोरौ ॥
लेखामें चूक न कारै, इहि नरभव मूढ़ ! न हारै ।
ज्यों हरियो परको वित्ता ते पापी दुष्ट जु चित्ता ॥
रुलिहै भव माहिं अनंता, जा परधन प्राण हरंता ।
चुगली करि मति हि लुटावौ, काहूकूं नाहिं कुटावौ ॥
परको ईजति मति हरि हो, परको उपगार जु करिहो ।
धन धान नारि पसु बाला, हरिये काहुके नहिं लाला ॥८०॥
काहूको मन नहिं हरिये हिरदामें श्रीजिन धरिये ।
तिर नर जीवनकी जीवी मेटौ मति करुणा कीवी ॥
तुम शल्य न राखौ बीरा, करि शुद्ध चित्त गुणधीरा ।
राका बाधी मति करिहो, काहूकी सोंपि न हरिहो ॥
बोलो मति दुष्ट जु बाके, तुम दोष गहौ मति काके ।
काहूको मर्म न छेदौ, काहूको छेत्र न भेदौ ॥
काहूको कछु नहिं बस्ता, मति हरहु होय शुभ अस्ता ।
इह व्रत धारौ वर वीरा, पावौ भवसागर तीरा ॥
जाकरि ह्वै कर्म विध्वस्ता, सो भाव धरौ परशस्ता ।
तृण आदि रत्न परजंता, पर धन त्यागौ बुधिवंता ॥
हरिवौ रागादिक दोषा, करवौ कर्मनको सोषा ।
धरि भर्म, धर्म धरि भाई, हूजे त्रिभुवनके राई ॥
अपनो अर परको पापा, हरिये जिनवचन प्रतापा ।
छाडे जु अदत्ता दाना, करि अनुभव अमृत पाना ॥

चोरी त्यागें शिव होई, चोरी लागे शठ सोई।
चोरीके दोय विभेदा, निश्चै ब्यौहार विछेदा॥
निश्चै चोरी इह भाई, तजि आतम जड लवलाई।
पर परणति प्रणमन चोरी, छाडे ते जिनमत धोरी॥
तजिकैं पर परणति जीवा, त्यागौ सब भाव अजीवा।
यह देह आदि पर वस्ता, तिनमो नहिं प्रीति प्रशस्ता॥९०॥
विन चेतन जे परपंचा, तिनमे सुख ज्ञान न रंचा।
इनमे नहिं अपनो कोई, अपनो निज चेतन होई॥
तातें सुनिके अध्यातम, छाडौ ममता सब आतम।
अपनो चेतन धन लेहो, परकी आसा तजि देहो॥
जे ममता पथ न लागे, निश्चै चोरी ते त्यागे।
जब निश्चै चोरी छूटै, तब काल भूपाल न कूटै॥
इह निश्चौ व्रत बखाना, या सम और न कोई जाना।
शिव पद दायक यह व्रत्ता, करिये भविजीव प्रवृत्ता॥
जिन त्यागी परकी ममत्ता, तिन पाई आतम सत्ता।
अब सुनि व्यवहार सरूपा, जो विधि खिनराज परूपा॥
इक देव जिनेसुर पूजौ, सेवौ मति जिन विन दूजौ।
विन गुरु निरग्रन्थ दयाला, सेवौ मति औरहि लाला॥
सुनि श्रीजिनजूके ग्रन्था, मति सुनहु और अघपंथा।
मिथ्यात समान न चोरी--धारें तिनकी मति भोरी॥
इह अंतर बाहिज त्यागें, तब व्रत विधान हिं लागें।
सम्यक ह्वै आतम भावा, मिथ्यात अशुद्ध विभावा॥
सम्यक निश्चौ व्यवहारा, सो धारौ तजि उरझारा।

वर व्रत आचारज धारें, ते सर्व दोषकों टारें ॥
या बिन नहिं साधू गनिया, या बिन नहिं श्रावक भनिया ।
श्रावक मुनि द्वय विध धर्मा, यह व्रत दुहुनको मर्मा ॥१००॥
मुनिके सब ममता छूटी ममतातें दुरमति टूटी ।
मुनि अवधि न एक धराही, काछु छाने नाहिं कराही ॥
देहादिक सों नहिं नेहा, बरसै घट आनन्द मेहा ।
मुनिके सब दोष जु नासे, तातें सु महाव्रत भासे ॥
मुनिके कछु हरनो नाहीं, चित लागै चेतन माहीं ।
श्रावकके भोजन लेई, नहिं स्वाद विषें चित देई ॥
काम न क्रोध न छल माना, नहिं लोभ महा बलवाना ।
जे दोष छियालिस टालें, जिनवरकी आज्ञा पालें ॥
ते मुनिवर ज्ञानसरूपा, शुभ पंच महाव्रत रूपा ।
गृह पतिके कछु इक धंधा, कछु ममता मोह प्रबन्धा ॥
छाने कछु करनो आवे, ताते अणुव्रत कहावै ।
कूपादिकको जल हरवौ, इह किंचित दोषहु धरवौ ॥
मोटे सब त्यागें दोषा, काहूको हरय न कोषा ।
त्यागौ परधनको हरवौ, छाडौ पापनिको करवौ ॥
संक्षेप कही यह वाता, आगे जु सुनहु अब भ्राता ।
इह अणुव्रतका जु सरूपा, जिनश्रुत अनुसार परूपा ॥
अब अतीचार सुनि भाई, त्यागौ पंचहि दुखदाई ।
है चोरीको जु प्रयोगा, सो पहलो दोष अजोगा ॥
चोरीको माल जु लेनों, इह दूजो अघ तजि देनों ।
थोरे मोले बड़ वस्ता, लेवौ नहिं कबहुं प्रशस्ता ॥१०॥

राजाकों हासिल गोपै, राजाकी आणि जु लोपै।
इह तीजो दोष निरूपा, त्यागौ व्रतधारी अनूपा।
देवेके तोला घाटै, लेवेके अधिका बाटै।
इह अतिचार है चौथो त्यागौ शुभमतितें थोथो ॥
वधि मोलमें घाटो मोला, भेले ह्वै पाप अतोला।
इह पंचम है अतिचारा, त्यागें जिन मारग धारा ॥
ए अतीचार गुरु भाखे, जैनी जीवनिनें नाखे।
चोरी करि दुरगति होई, चोरी त्यागें शुभ सोई ॥
चोरी तजि अंजनचोरा, तिरियो भवसागर घोरा।
लोह महामन्त्र तप गहिया, दावानल भववन दहिया ॥
अंजन हूओ जु निरंजन, इह कथा भव्य मनरञ्जन।
बहुरी नृप श्रेणिक पुत्रा, है वारिषेण जगमित्रा ॥
कर परधनको परिहारा, पायौ भवसागर पारा।
चोरी करि तापस दुष्टा, पश्चा गत साधनि पुष्टा ॥
लहि कोटपालकी त्रासा, मरि नरक गयौ दुख भाषा।
दलिद्रको मूल जु चोरी, चोरी तजि अर तजि जोरी ॥
सब अघ तजि जिनसो जोरी, विनऊ भैय्या कर जोरी।
चोरी तजिया शिव पावै, यह महिमा श्रीजिन गावें ॥
चोरीतें भव भव भटकै, चोरीतें सब गुन सटकै।
जो बुधजन चोरी त्यागै, सो परमारथ पथ लागै ॥२०॥

दोहा—परधनके परिहार बिन, परम धाम नहिं होय।
भये पार ते तीसरे, व्रत बिना नहिं कोय ॥
जे बढ़े नर नरकमें, गये निगोद अजान।

ते सब परधन हरणतें, और न कोई बखान ॥
व्रत आचौरिज तीसरो, सब व्रतनिमें सार ।
जो याकों धारै व्रती, सो उधरै संसार ॥
याकी महिमा प्रभु कहैं, जो केवल गुणरूप ।
पर गुणरहित निरञ्जना निर्गुण निर्मलरूप ॥
कहैं गणिंद मुनिन्द्वर, करें भव्य परमान ।
जो धारें ते पावही; पूरणपद निर्वान ॥
अल्पमती हम सारिखे, कहे कौन विधि वीर ।
नमस्कार या व्रतकों, धारें धर्माधीर ॥
जो उरझे ते या बिना, इह निश्चै उर धारि ।
जो सुरझे ते या करी, यह व्रत है अघहारि ॥
दया सत्य संतोष अर, शीलरूप है एह ।
उधरै भवसागर थकी धरै या थकी नेह ॥
दया सत्य अस्तेयकौं करि वन्दन मन लाय ।
भाषों चौथो शीलव्रत जो इन बिगर न थाय ॥

इति अचौर्याणुव्रत वर्णन ।

प्रणमि परम रस शासिको, प्रणमि धरम गुरुदेव ।
बरणों सुजससुशीलको, करि सारदकी सेव ॥३०॥
शीलव्रतको नाम है, ब्रह्मचर्य सुखदाय ।
जाकरि चर्या ब्रह्ममें, भवबन भ्रमण नशाय ॥
ब्रह्म कहावें जीव सब, ब्रह्म कहावें सिद्ध ।
ब्रह्मरूप कैवल्य जो, ज्ञान महा परसिद्ध ॥
ब्रह्मचर्य सो व्रत ना, न परब्रह्म सो कोय ।

व्रती न ब्रह्म-लवलीन सो, तिरै, भवोदधि सोय ॥
विद्या ब्रह्म-विज्ञानसी नहीं दूसरी जान।
विज्ञ नहीं ब्रह्मज्ञ सो, इह निश्चै उर आन ॥
ब्रह्म वासना सारिखी, और न रसकी केलि।
विषै वासना सारिखी,और न विषकी बेलि ॥
आतम अनुभव शक्तिसी और न अमृतबेलि।
नहीं ज्ञान सो बलवता, देहि मोहको ठेलि ॥
अव्रत नाहिं कुशील सो, नरक निगोद प्रदाय।
नही सील सो संजमा, भाषे श्रीजिनराय ॥
धर्म न श्रीजिनधर्मसे नहिं जिनवरसे देव।
गुरु नहिं मुनिवर सारिखे, रागीसे न कुदेव ॥
कुगुरु न परिग्रहधारिटै, हिंसासो न अधर्म।
भर्म न मिथ्या सूत्रसो, नहीं माह सो कर्म ॥
द्रव्य न कोई जीव सा, गुन न ज्ञान सो आन।
ज्ञान न केवल ज्ञान सो जीव न सिद्ध समान ॥४०॥
केवलदर्शन सारिखो, दर्शन और न कोई।
यथाख्यात चारित्र सो चारित और न होई ॥
नहिं विभाव मिथ्यातसो सम्यकसो नहिं भाव।
क्षायिकसो सम्यक नहीं, नहीं शुद्धसा भाव ॥
साधु न क्षीणकषायसे,श्रेणि न क्षपक समान।
नहिं चौदम गुण थानसो, और कोई गुणथान ॥
नहिं केवल परतक्षसो, और कोई परमाण।
सुकल ध्यानसो ध्यान नहिं, जिनमतसा न बखाण ॥

अनुभवसो अमृत नहीं, नहि अमृतसो पान ।
इन्द्री रसनासी नहीं, रस न शांतिसो आन ॥
मन गुप्तिसी गुप्ति नहिं,चञ्चल मनसो नाहिं ।
निश्चल मुनिसे और नहिं,नहीं मौन मन माहिं ॥
मुनिसे नहिं मतिवंत नर, नहिं चक्रीसे राव ।
हलधर अर हरि सारिखो, हेतन कहू लखाव ॥
प्रतिहरिसे न हठी भये, हरिसे और न सूर ।
हरसे तासम धार नहिं, बहु विद्या भरपूर ॥
नारदसे न भ्रमंत नर, भ्रमें अढाई दीप ।
कामदेवसे सुन्दर नर नहिं जिनसे जगदीप ॥
जिन-जननी जिनजनकसे, और न गुरुजनजानि ।
मिष्ट न जिनवानी समा, यह निश्चै परमान ॥ ५०॥
जिनमूरति मूरति न, परमानंद सरूप ।
जिनसूरतिसी सूरति न,जासम और न रूप ॥
जिनमंदिरसे मंदिर नहीं जिम तनसो न सुगंध ।
जिनविभूतिसी भूति नहिं,जिन सुतिसो न प्रबंध ॥
जिनवरसे न महाबली, जिनवरसे न उदार ।
जिनवरसे न मनोहरा जिनसे और न सार ॥
चरचा जिनचरचा समा, और न जगमे कोई ।
अर्चा जिन अर्चा समा, नहीं दूसरी होइ ॥
राज न श्रीजिनराजसे,जिनके राग न रोस ।
ईति भीति नहिं राजमें, नहीं अठारा दोस ॥
सेवैं इन्द नरिंद सब, भजहिं फणीस मुनीस ।

रटे सूर ससि सुर सबै, जिनसम और न ईस ॥
अर्चे सहमिंद्रा महा, अरचे चतुर सुजान ।
हरिहर प्रतिहरि हलि मदन, पूजें चक्रिपुमान ॥
गुरुकुल कर नारद सबै, सेवे तन मन लाय ।
जगमें श्रीजिनरायसा, पूज्य न कोई लखाय ॥
तीर्थंकर पद सारिखा, और न पद जग माहिं ।
वज्रवृषभनाराचसो, संहनन कोइ नाहिं ॥
समचतुरजसंठानसो, और नहीं सठाण ।
पुरुष सलाका सारिखा, और न कोई जाण ॥६०॥
चक्रायुध हलआयुधा, जे हैं चर्मसरीर ।
ते तीर्थंकर तुल्य है, कुसमायुध सब धीर ॥
और हु चर्मसरीर धर, तदभव मुक्ति मुनीस ।
ते जिननाथ समान हैं, नमें सुरासुर सीस ॥
नहीं सिद्ध पर्य्यायसी नहीं और पर्याय ।
नहीं केवलीकायसी, और दूसरी काय ॥
अर्हंत सिध साधू सबै, केवलि भासित धर्म ।
इन चउसे नहि मंगला, उत्तम और न पर्म ।
इन चउसरणन सारिखे, सारण नहिं जगमाहिं ।
संघ न चउविधि सघसे, जिनके संसय नाहिं ॥
चोर न इन्द्री-चित्तसे, मुसे धर्मधन भूरि ।
चारितसे नहिं तलवरा, डारैं चारनि चूरि ॥
जैसें ए उपमा कहीं, तैसें शील समान ।
व्रत न कोई दूसरो, भाषे श्री भगवान ॥

वक्ता सर्वज्ञसे नहीं श्रोता गणधरसे न ।
कथन न आतम ज्ञानसो, साधक साधू जिसेन ॥
बाधक नहिं रागादिसे, तिनहिं तजें जे गिन्द ।
नहिं साधन समभावसे, धारें धीर मुनिंद ॥
पाप नहीं परद्रोहसो, त्यागें सज्जन सन्त ।
पुन्य न पर उपगारसो, धारें नर मतिवंत ॥ ७० ॥
लेस्या शुकल समान नहिं, जामें उज्जल भाव ।
उज्वलता न कषाय सी और न कोई लखाव ।
दया प्रकाशक जगतमें, नहीं जैन सो कोइ ।
पर्म धर्म नहिं दूसरो दया सारिखो होइ ॥
कारण निज कल्याणको, करुणा तुल्य न जानि ।
कारण जिन विश्वासको, नहीं सत्यसो मानि ॥
सत्यारथ जिनसूत्रसो, और न कोइ प्रवानि ।
सर्व सिद्धिको मुल है, सत्य हियेमे आनि ॥
नहिं अचौर्यव्रत सारिखो, भै हरि भ्राति निवार ।
नहिं जिनेन्द्र मत सारिखौ, चोरी बरज उदार ॥
नहीं सीलसो लोकमें, है दूजो अविकार ।
कारण शुद्ध स्वभावको, भवजलतारण हार ॥
नहिं जिनसासन सारिखौ, शील प्रकाशनहार ।
या संसार असारमे जा सम और न सार ॥
नहिं सन्तोष समान है, सुखको मूल अनूप ।
नहीं जिनेसुर धर्मसों, बर सन्तोष स्वरूप ॥
कोमल परिणामानिसो, करुणाकारक नाहिं ।

नहिं कठोर भावानिसो, दयारहित जग माहिं ॥
नहि निरलोभ स्वभावसो सत्य मूल है कोइ ।
नहीं लोभसो लोकमे, कारण मिथ्या होइ ॥८०॥
मूल अचोरिज व्रतको, निसप्रहतासो नाहिं ।
चोरी मूल प्रपंचसो, नहीं लोकके माहिं ॥
राजवृद्धिको कारणा, नहीं नीतिसो जानि ।
नाहिं अनीति प्रचारसो, राजविघन परवानि ॥
कारण सजम शीलको, नहिं विवेकसो मानि ।
नहिं अविवेक विकारसो, मूल कुशील बखानि ॥
मूल परिग्रहत्यागको, नहि वैराग समान ॥
परिग्रह संग्रह कारणा, तृष्णा तुल्य न आन ।
करुणानिधि न जिनेन्द्रसो, जगतमित्र है सोय ॥
नहिं क्रोधीसो निरदई, सर्वनाशको होय ॥
सतवादी सर्वज्ञ से, नहीं लोकमे कोइ ।
कामी लोभीसे नहीं, लापर और न होइ ॥
सम्यकदृष्टी जीवसो और बिसन मदमोर ।
मिथ्यादृष्टी जीवसो, और न परधन चोर ॥
समताभाव न सत्यसो, सीलवंत नहीं धीर ।
लम्पट परिणामी जिसो, नाहिं कुशीली वीर ॥
निसप्रेही निरदुन्दसो, परिग्रह त्यागी नाहिं ।
तृष्णातन्त असंतसो, परिग्रहवंत न काहिं ॥
दारिदभंजन जस करण, कारण सम्पति कोइ ।
नहीं दानसो दूसरो, सुरग मुक्ति दे सोइ ॥ ९० ॥

चउ दाननसे दान नहिं, औषध और अहार ।
अभयदान अर ज्ञानको, दान कहैं गणसार ॥
रागादिक परिहारसो, और न त्याग बखान ।
त्याग समान न सूरता, इह निश्चै परवान ॥
तप समान नहिं और है, द्वादश माहिं निधान ।
नहीं ध्यानसो दूसरो, भाखें श्रीभगवान ॥
ध्यान नहीं निज ध्यानसो, जो कैवल्यशरीर ।
जा प्रमाद भवरूप मिटि, जीव होय चिद्रूप ॥
क्षीणमोहसे लोकमें ध्यानी और न जानि ॥
कारण आतमध्यानको, मन निश्चलता मानि ॥
कारण मन वसिकरणको, नहीं जोगसो और ।
जोग न निज संजोगसो, है सबको सिरमौर ॥
भोग न निज रस भोगसो, जामें नाहिं विजोग ।
रोग न इन्द्री भोगसो इह भाखे भवि लोग ॥
शोक न चिन्ता सारिखौ, विकलरूप बडरूप ।
नहिं संसय अज्ञानसो, लखौ न चेतन रूप ॥
विकलप जाल प्रत्यागसो, और नहीं वैराग ।
वीतरागसे जगतमें, और नहीं वड़भाग ॥
छती संपदा चक्रिकी, जो त्यागै मतिवंत ।
ता सम त्यागी और नहिं, भाखें श्रीभगवंत ॥ १०० ॥
चाहे अछति भूतिको, करै कल्पना मूढ़ ।
ता सम रागी और नहि, सो सठ विषयारूढ़ ॥
नव जोवनमें ब्याह तजि, बालब्रह्म व्रत लेय ।

ता सम वैरागी नहीं, सो भवपार लहेय ॥
कंटक नहिं क्रोधादिसे, चढिजु रहे गिरमान।
मुनिवरसे जोधा नहीं, शस्त्र न कुशल समान ॥
भाव समान न भेष है, भाव समान न सेव।
भाव समान न लिंग है, भाव समान न देव ॥
ममता-माया रहितसो, उत्तम और न भाव।
सोई सुध कहिये महा, वर्जित सकल विभाव ॥
कारण आतमध्यानको, भगवत भक्ति समान।
और नहीं ससारमे, इह धारौ मतिवान ॥
विघन हरण मंगल करन, जप सम और न जानि।
जप नहिं अजपाजापसो, इह श्रद्धा उर आनि ॥
कारण राग विरोधको, भाव अशुद्ध जिसौन।
कारण समता भावको, विरकित भाव निसौन ॥
कारण भवबन भ्रमणके, नहिं रागादि समान।
कारण शिवपुर गमनको नहीं ज्ञानसो आन ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत ए रतनत्रय जानि।
इनसे रतन न लोकमे, ए शिवदायक मानि ॥ १० ॥
निज अवलोकन दर्शना, निज जाने सो ज्ञान।
निज स्वरूपको आचरण सो चारित्र निधान ॥
निजगुण निश्चय रतन ये, कहे अभेदस्वरूप।
विवहारै नव तत्वकी, श्रद्धा अविचल रूप ॥
तत्वारथ श्रद्धानसो, सम्यग्दर्शन जानि।
नव पदार्थको जानिबौ सम्यग्यान बखानि ॥

विषयकषाय व्यतीत जो सो विवहार चरित्र ।
ए रतनत्रय भेद हैं, इनसे और न मित्र ॥
देव जिनेसुर गुरु जती, धर्म अहिंसा रूप ।
श्रद्ध सम्यक व्यवहार है, निश्चय निज चिद्रूप ॥
नहिं निश्चय व्यवहारसी, सरधा जगमें कोइ ।
ज्ञान भक्ति दातार ये जिन भाषित नय दोइ ॥
भक्ति न भगवत भक्तिसी, नहिं आतमसो बोध ।
रोध न चित्तनिरोधसो, दुरनयसो न विरोध ॥
दुर्मतसी नहिं साकिनी, हरै ज्ञान सो प्रान ।
नमोकार सो मंत्र नहिं, दुरमति हरै निधान ॥
नहिं समाधि निरुपाधिसी, नहि तृष्णासी व्याधि ।
तंत्र न परम समाधिसो, हरै सकल असमाधि ॥
भवयंत्र जु भयदायको तासम विघन न कोय ।
सिद्ध यंत्र सो सिद्धकर, और न जगमें होय ॥ २० ॥
सिद्धक्षेत्रसो क्षेत्र नहिं, सर्व लोकके सीस ।
यात्री जतिवरसे नहीं, पहुंचै तहां मुनीस ॥
षोड़सकारण सारिखा, और न कारण कोय ।
तीर्थेश्वर भगवंतसा, और न कारज होय ॥
नाहीं दर्शन शुद्धिसा, षोडस माहीं जान ।
केवल रिद्धि बराबरी, और न रिद्धि बखान ॥
नहिं लक्खण उपयोगसे, आतमतें जु अभेद ।
नाहिं कुलक्खण कुबुधिसे, करै धर्मको छेद ॥
धर्म अहिंसा रूपके भेद अनेक बखान ।

नहिं दशलक्षण धर्मसे, जगमें और विधान ॥
क्षमाउत्तमा सारिखौ, और दूसरो नाहिं ।
दशलक्षणमें मुख्य है, क्रोधहरण जग माहिं ॥
नीर न शांति स्वभावसो, अगनि न कोप समान ।
मान समान न नीचता, नहीं कठोरता आन ॥
मानीको मन लोकमें, पाहन तुल्य बखान ।
मान समान अज्ञान नहीं, भाखें श्रीभगवान ॥
नि गरव भाव समानसो, मद नहिं जगमे और ।
हरै समस्त कठोरता, है सबको सिरमौर ॥
कीच न कपट समानसो, वक्र न कपट समान ।
सरल भावसो उज्वल न सूधौ कोइ न आन ॥ ३० ॥
आपद लोभ समान नहि, लोभ समान न लाय ।
लोभ समान न खाड है, दुख औगुन समुदाय ॥
नहिं संतोष समान धन, ता सम सुखी न कोय ।
नहि ता सम अमृत महा, निर्मल गुण है सोय ॥
शुभ नहि निर्मल भावसो, जहा न सशुभ सुभाव ।
नहीं मलीन परिणामसों, दूजो कोई कुभाव ॥
सन्देह न अयथार्थसो, जाकरि भर्म न जाय ।
नहीं जथार्थसो लोकमे, निस्सन्देह कहाय ॥
नाहि कलक कषायसो, भाषे श्रीभगवन्त ।
नि.कलक अकषायसे, करै कर्मको अन्त ॥
शुचि नहिं मनशुचि सारिखी, करै जीवको शुद्ध ।
अशुचि नहीं मन अशुचिसी इह भाषें प्रतिबुद्ध ॥

नहीं असंजम सारिखौ, जगत डुबावन हार ।
नहीं संजमसो लोकमें, ज्ञान बढावन हार ॥
बंचक नहि परपंचसे, ठगें सकलको सोइ ।
विषैवाछना सारिखी, नाहिं ठगौरी कोइ ॥
नहिं त्रिलोकमें दूसरो, तपसो ताप १ निवार ।
त्रिविध तापसे ताप नहीं, जरा जन्म मृतिधार२ ॥
इच्छासी न अपूरणा, पूरी होइ न सोइ ।
नहिं इच्छा जु निरोधसी, तपस्या दूजा होइ ॥ ४० ॥
त्याग समान न दूसरो, जग जंजाल निवार ।
नहीं भोग अनुरागसो नरकादिक दातार ॥
नहीं अकिञ्चन सारिखौ, निरभय लोक मंझार ।
नर परिगरही सारिखौ, भैरूप न निरधार ॥
परिग्रहसो नहिं पापगृह, नहिं कुशीलसो काद३ ।
ब्रह्मचर्यसो और नहीं, ब्रह्मज्ञानको बाद ॥
नहीं विषैरस सारिखौ, नीरस त्रिभुवन माहि ।
अनुभवरस आस्वादसो, सरस लोकमें नाहिं ॥
अदयासी नहीं दुष्टता, अनृतसो न प्रपंच ।
छल नहीं चोरी सारिखौ, चोर समान न टंच (?)
हिंसकसो नहीं दुर्जना, हरै पराये प्राण ।
नहीं दयालसो सज्जना, पीरा हरै सुप्राण ॥
नहीं विश्वासघाती अवर, झूंठे नरसो कोय ।
नहीं भवचारीसो अना,—चारी जगमें होय ॥

---

१ दुःख । २ मृत्यु । ३ कीचड़ ।

विकथासो न प्रलाप है, आरतिसो न विलाप।
थाप न द्वय नय थापसो, जिनवरसो न प्रताप॥
सन्ताप न को मोकसो, लोक न सिद्ध १ समान।
धन प्राणनके नाशसो, और न शोक बखान॥
जडजिय २ सो अमलाप नहीं, गुणमणिसो न मिलाप।
श्रीजिनवर गुणगानसो, और न कोई अलाप॥ ५०॥
नहिं विकथा नारिनिसी, कथा न धर्म समान।
नहीं आरति भोगार्त्तिसी, दुरगतिदाई आन॥
ॐकार समान नहीं, सर्व शास्त्रकी आदि।
महा मंगलाचार है, यह उपचार अनादि॥
नाद न सोऽहं सारिखौ, नहीं स्वरस३सो स्वाद।
स्याद्‌वाद सिद्धांतसो, और नहीं अविवाद॥
एक एक नय पक्षसो, और न कोई स्वाद।
नाहिं विषाद विवादसो, निद्रासो न प्रमाद॥
सत्यानगृद्धिनिद्रा जिसी, निद्रा निंद्य न और।
परनिंदासो दोष नहिं, भाषें जिन जगमौर॥
निंदा चउविधि संघकी, ता सम अघ नहिं कोय।
नाहिं मुनिसे अध्यातमी, सर्व विषय प्रतिकूल॥
विषय कषाय बराबरी, वैरी जियके नाहिं।
ज्ञान विराग विवेकसे, हितू नहिं जग माहिं॥
अध्यातम चरचा समा, चरचा और न कोय।
जिनपद अरचा सारिखी, अरचा४ और न होइ॥

१ मोक्ष। २ मूर्ख। ३ आत्मरस। ४ पूजा।

नाहिं गणधिपसे महा,-- चरचाकारक जानि ।
नाहिं सुरधिप सारिखे, अरचाकारक मानि ॥६०॥
गमन न ऊरध गमनसो, नहीं मोक्षसो धाम ।
रोधक नाहीं कर्मसे, हरो कर्म तजि काम ॥
शत्रु न कोई अधर्मसो, मित्र न धर्म समान ।
धर्म न वस्तुस्वभावसो हिंसा रहित बखान ॥
निज स्वभावको विस्मरण, नहिं ता सम अपराध ।
साधे केवलभावकों ता सम और न साध ॥
नर देही सम देह नहिं, लिङ्ग न पुरुष समान ।
वेद नहीं नर वेदसो, सुमन समो न सयान ॥
त्रस काया सम काय नहिं, पंचेन्द्री जा माहिं ।
पंचेन्द्री नहि मिनषसे जे मुनिव्रत धराहिं ॥
मुनि नहि तदभवमुक्तिसे, जे केवलपद पाय ।
पहुंचें पचमगति१ महा, चहुंगति भ्रमण नशाय ॥
गति नहिं पंचमगति जिसी, जाहि कहै निजधाम ।
अविनश्वरपुर नाम जो, जो सम नगर न राम ॥
नाहिं सुद्ध उपयोगसो मारग सूधौ होय ।
नहीं मारग मुक्तिको, भवविरक्तिसो कोय ॥
लोक शिखरसो ऊंच नहिं, सबके शिरपर सोय ।
नहीं रसातल सारिखौ नीचो जगमें जोय ॥
जितमनइन्द्री२ धीरसे और न वंद्य२ बखानि ।
विषयी विकलनि सारिखे, और न निंद्य प्रवानि ॥७०॥

१ मोक्ष ।

नहिं अरिष्ट अघकर्मसे, शिष्ट न शुभग समान ।
नाहिं पञ्चपरमेष्टिसे, और इष्ट परवान ॥
जिनदेवलःसे देवल न, नहीं जैनसे बिम्ब ।
केवलसो ज्ञायक नहीं, जामे सब प्रतिबिंब ॥
नाहिं अकर्तम सारिखे देवल अतिसैरूप ।
चैत्यवृक्षसे वृक्ष नहिं, सुरतरुसें हु अनूप ॥
जोगी जिनवरसे नही, जिनकी अचल समाधि ।
निजरस भोगी ते सही वर्जित सकल उपाधि ॥
इन्द्रिय भोगी इन्द्रसे नाहिं दूसरे जानि ।
इन्द्री जीत मुनिन्द्रसे, इन्द्रनरेन्द्रनि मानि ।
राग दोष परपञ्चसे, असुर और नहि होय ॥
दर्शन-ज्ञान-चरित्रसे, असुर नाशक न कोय ॥
काम-क्रोध-लोभादिसे नाहिं पिशाच बखानि ।

१ इन्द्रियोंको जीतनेवाले । २ वन्दना । ३ मन्दिर ।

सम सन्तोष विवेकसे, मन्त्राधीश न मानि ॥
माया मच्छर१ मानसे, दुखकारी नहिं वीर ।
निगरव निकपटभावसे सुखकारी नहि धीर ॥
मैल न कोइ मिथ्यातसो, लग्यौ अनादि विरूप ।
साबुन भेदविज्ञानसो, और उज्वलरूप ॥
मदन-दर्पसो सर्प नहिं, डसै देव नर नाग२ ।
गरुड न कोई शीलसो, मदनजीत३ बडभाग ॥८०॥
मैल न मोहासुर समो, सकलकर्मको राव ।
महामल्ल नहिं बोध सा, हरै मोह परभाव ॥

भर्म न कोई कर्मसे, कारण संसै जानि।
भ्रमहारी सम्यक्तसे, और न कोई मानि॥
विष नहिं विषयानंदसे, देहि अनन्ता मर्ण।
सुधा न ब्रह्मानन्दसो, अनुभवरूप अवर्ण॥
क्रूर न क्रोधी सारिखे, नहीं क्षमीसे शांत।
नीच न मानी सारिखे, नि गरवसे न महान्त॥
मायावीसो मलिन नहि, विमल न सरल समान।
चिंतातुर लोभीनसे दीन न दुखी अयान॥
दुष्ट न दोषी सारिखे, रागिसे नहिं अन्ध।
अहंकार ममकारसो, और न कोई बन्ध॥

१ मत्सर। २ सर्प। ३ कामदेव।

मोहीसे नहिं लोकमे, गहलरूप मतिहीन।
कामातुरसे आतुर न, अविवेकी अघलीन॥
ऋण नहिं आस्रव-बंधसे राखे भवमे रोकि।
मुनिवरसे मतिवन्त नहिं छूटें ब्रह्म विलोकि॥
संवर निर्जर सारिखे, रिणमोचन नहिं कोइ।
दुर्जर कर्म हरें महा, मुक्तिदायका सोइ॥
विपति न वाछा सारिखी वाछा रहित मुनीस।
मृगतृष्णा मिथ्या जसो और कहैं रिषीस॥१०॥
समतासी संसारमें साता कोइ न जानि।
सातासी न सुहावणी, इह निश्चै चर आनि॥
ममतासी मानों भया, और असाता नाहिं।
नाहिं असाता सारिखी, है अनिष्ट जगमाहिं॥

उदासीनता सारिखी समताकरण न कोय ।
जग अनुराग समानता, समता भूल न जोय ॥
नाहिं भोग-अभिलाषनी, भूख अपूरण वीर ।
नाहिं भोग-वैरागसी, पूरणता है धीर ॥
नाहीं विषयासक्तिसी, त्रिषा त्रिलोकी माहिं ।
विरकतताभी विश्वमे, और तृषाहर नाहिं ॥
पराधीनता सारिखी, नहीं दीनता कोइ ।
नहिं कोई स्वाधीनता,—तुल्य उचता होइ ॥
नाहीं समरसीभावसी, समता त्रिभुवन माहिं ।
पक्षपात बकवादसीं और न विकथा नाहिं ॥
जगतकामना कलपना,-तुल्य कालिमा नाहिं ।
नहीं चेतना सारिखी,ज्ञायक त्रिभुवन माहिं ॥
ज्ञानचेतना सारिखी, नहीं चेतना शुद्ध ।
कर्म कर्मफल चेतना, ता सम नाहिं अशुद्ध ॥
नर निरलोभी सारिखे, नाहिं पवित्र बखान ।
संतोषीसे नहिं सुखी इह निश्चै परवान ॥१००॥
निरमोही अर निरममत, ता सम संत न कोय ।
निरदोषी निरवैरसे, साधू और न कोय ॥
दोष समान न मोषहर राग समान न पासि ।
मोह समान न बोधहर, ए तीनू दुखरासि ॥
व्रती न कोइ निसल्यसो, माया तुल्य न शल्य ।
हीन न जाचिक सारिखौ त्यागीसे न अतुल्य ॥
कामीसे न कलंकधी काम समान न दोष ।

परदारा परद्रव्यसो, और न अघको कोष ॥
सल्य समान न है भली, चुभी हियेके माहिं ।
नहिं निरदोष स्वभावसो, मूढा और कहाहिं (?)
शोच न संग समान है, सङ्ग न अङ्ग समान ।
अङ्ग नहीं द्वय अङ्गसे, तिनहिं तजै निरवान ॥
कारमाण अर तैजसा, ए द्वय देह अनादि ।
लगे जीवके जगतमें, रोग महा रागादि ॥
गेह समान न दूसरो, जानूं कारागेह ।
देह समान न गेह है, त्यागौ देह-सनेह ॥
ए काया नहि जीवकी, सो है ज्ञान शरीर ।
मृत्यु न ज्ञान शरीरको, नहीं रोगको पीर ॥
नाहीं इष्ट वियोगसो, सोगमूल है कोइ ।
काया माया सारिखौ, इष्ट न जगके जोइ ॥१०॥
नहिं संकल्प विकक्लपसो,जाल दूसरो जानि ।
नहिं निरविकलप ध्यान सो,छेदक जाल बखानि ॥
नहीं एकता सारिखी परम समाधि स्वरूप ।
नहीं विषमतासी अवर सठता रूप विरूप ॥
चिन्तासी असमाधि नहिं, नहिं तृष्णासी व्याधि ।
नहीं ममतासी मोहनी, मायासी नउपाधि ॥
ज्ञानानदादिक महा, निजस्वभाव निरदाव ।
तिनसों तन्मय भाव जो, सो एकत्व महाव ॥
आशासी न पिशाचिनी आसासी न असार ।
नहीं जाचना सारिखी, लघुता जगत मंझार ॥

ज्ञानकलासी दूसरी, दुख हरणी नहिं कोइ ।
ज्ञानकलासो जगतमे सुखकारी नहिं होइ ॥
नहिं क्षुधासी वेदना व्यापै भवकों सोइ ।
अन्न-पान दातारसे, दाता और न होइ ॥
पर दुखहरणी सारिखी गुरुता और न जानि ।
पर पीडा करणी समा खलता कोइ न मानि ॥
शुद्ध पारणामिक समा, और नाहिं परिणाम ।
सकल कामना त्यागसो और न उतम काम ॥
धर्म सनेही सारिखा, नाहिं सनेही होइ ।
विषैं सनेही सारिखा और कुमित्र न कोइ ॥२०॥
सर्व वासना त्यागसी, और न थिरता वीर ।
कष्ट न नरक निगोदसे, नहीं मरणसो पीर ॥
राज-काज अभ्याससो और न दुरगतिदाय ।
जोगाभ्यास अभ्याससो और न रिद्धि उपाय ॥
नहिं विराधना सारखी, वाधाकरण कहाहिं ।
आराधनसी दूसरी, भवबाधाहर नाहिं ॥
निजसरूप आराधना,अचल समाधि स्वरूप ।
ता सम शिवसाधन नहीं, यह भाषें जिनभूप ॥
निज सत्तासी निश्चला, और न मानो मित्त ।
आधि-व्याधि ते रहित जो, ध्यावौ निर्चित ॥
निज सत्ताको भूलि जे राचें माया माहिं ।
धरि धरि काया ते भ्रमें, यामें संसै नाहि ॥
मुनिव्रत तजि भवभोगकों, चाहै जे मतिमंद ।

तिनसे मूढ न लोकमें, इह भाषें जिनचंद ॥
वृद्ध भये हू गेहको, जे न तजे मतिहीन।
तिनसे गृद्ध न जगतमे, कापुरुषा न मलीन ॥
गेह तजें नववर्षके, धरें महाव्रत सार।
तिनसे पूज्य न लोकमे, ते गुणवृद्ध अपार ॥
नहिं वैरागी जीवसे, निरबंधन निरुपाधि।
नहीं जु रोगी सारिखे धारक आधि रु व्याधि ॥३०॥
निजरस आस्वादन विमुख, भुगतें इन्द्रीभोग।
नरकवासना ते लहैं, तिनसे नाहिं अजोग ॥
अभविनिसे न अभागिया,भव्यनिसे न सभाग।
निकटभव्यसे भव्य नहिं, गहैं ज्ञान वैराग ॥
नहिं दरिद्र दुरबुद्धिसो दलदर सो न दुकाल।
नहिं संपति सनमति जिसी,नहीं मोह सो जाल ॥
नहीं समीसे संयमी, व्रतसा नाहिं विधान।
नहिं प्रधान निजबोधसो,निज निधिसो न निधान ॥
कोष न गुणभंडारसो, सदा अटूट अपार।
औगुनसो नहिं गुणहरा,भव भव दुखदातार ॥
खल स्वभावसो औगुन न,गुण न सुजनता तुल्य।
सत्य पुरुष निरवैरसे, जिनके एक न शल्य ॥
खलजन दुरजन सारिखे और दूसरे नाहिं।
भवबन सो वन नाहिं कौ भ्रमै मूढ जा माहिं ॥
विषवृक्ष न वसुकर्मसे, नानाफल दुखदाय।
वेलि न मायाजालसी जगजन जहां फसाय ॥

दुरनयपक्षी सारिखे, नाहिं कुपक्षी आन।
दैत्य न निरदयभावसे तिमर न मोह समान॥
मद उनमाद गयदसो, और न बनगज कोइ।
क्रूरभावसो सिंह नहिं, ठग न मदनसो होइ॥४०॥
नहिं अजगर अज्ञानसो, ग्रसै जगतको जोइ।
नहिं रक्षक निजध्यानसो, काल हरण है सोइ॥
थिर चरसे(?)नहिं वनचरा, बसे सदा भव माहिं।
नहिं कंटक क्रोधादिसे, दया तिनूमें नाहिं॥
विष पहुप न विषयादिसे, रहै कुवासन पूरि।
नाहिं कुपुत्र कुसूत्रसे, ते या वनमें भूरि॥
पंथ न पावें जगतमे, मुकति तनों जग जंत।
कोइक पावै ज्ञान निज, सोई लहै भव अंत॥
नहि सेरी जिनवानिसी, दरसक गुरुसे नाहिं।
नगर नहीं निरवाणसो, जहा संतही जाहिं॥
नहिं समुद्र ससारसो, अति गंभीर अपार।
लहर न विषैतरंगसी मच्छ न जमसा भार॥
भ्रमण न चहूगति भ्रमणसो, भरमे जीव अपार।
पोन न मुनिव्रतसो महा, करै भवोदधि पार॥
द्वीप नहीं शिवद्वीपसो, गुन रतननकी रासि।
तीरथनाथ जिनंदसे, सारथवाह न भासि॥
अघकूप नहि जगतसो परै तहा तनधार।
जिन विन काढै कौन जन, करिकै करुणा सार॥
नाहिं भवानल सारिखो, दावानल जग माहिं।

जगतचराचर भस्म कर, यामें संशय नाहिं ॥५७॥
जिनगुण अंबुधि शरण ले,ताहि न याको ताप।
तातें सकल विलाप तजि, सेवौ आप निपाप ॥
नहीं वायु जगवायुसी, जगत उड़ावे जोय।
काय टापरी बापरी, यापै टिके न कोय ॥
जिनपद परवत आसरा,जो नर पकरै आय।
सोई यामे ऊबरै, और न कोइ उपाय ॥
नाहिं अतिंद्री सुक्खसो, पूरण परमानंद।
नाहिं अफंद मुनिंद्रसो, आनंदी निरदुन्द ॥
नहिं दिक्षा दुखहारिणी, जिनदिक्षासी कोय।
नहिं शिक्षा सुख कारिणी, जिनशिक्षासी होय ॥

चाल जोगीरासा।

फंद न कनककामिनी सरिखा, मृग नहिं मूरख नरसा।
नाहिं अहेरी काम लोभसा, सूर न अंध सु नरसा ॥
काटत फंद न बोधव्रत्तसा, मंदमती न अभविसा।
बुद्धिवंत नहिं भव्यजीवसा, भव्य न तदभव शिवसा ॥
पुरुष सलाका महाभागसे, तथा चरम तन धरसे।
और न जानों पुरुष प्रवीना, गुरु नहिं तीर्थंकरसे ॥
ते पहली भाषे गुणवंता, अब सुनि देवस्वरूपा।
इन्द्र तथा अहिमिन्द्र सरीखे, और न देव अनूपा ॥
इन्द्र न षट इन्द्रनिसे कोई सौधर्म सनतकुमार।
ब्रह्मेन्द्र जु अर लान्तव इन्द्रा, आनत आरण सारा ॥
ए एका भवतारी भाई नर ह्वै शिवपुर लेवें।

सम्यकदृष्टी इन्द सबै ही, श्रीजिनमारग सेवैं ॥
लोकपालहू सम्यकदृष्टी, इकभव धरि भवपारा ।
इन्द्र सारिखे सुर ये सोहै, इनसे देव न सारा ॥
देवरिषी लौकांतिक देवा, तिनसे इन्द्रहु नाहीं ।
ब्रह्मचर्य धारत ए देवा, इनसे भुवन न माहीं ॥
तप कल्याणक समये सेवा,—करें जिनेसुरकीये ।
नर ह्वै पावें पद निरवाना, राखें जिनमत हीये ॥
इंद्राणीसी देवी नाहीं इन्द्राणी न शचीसी ।
इक भव धरि पावै सुखवासा तीर्थंकर जननीसी ॥६०॥
सेवक देव जिनेसुरजूके, नाहिं सुरेसुर तुल्या ।
शची सारिखी भक्त न कोई, धारे भाव अतुल्या ॥
कल्याणक ए पांचू पूजैं, शची शक्र जिनदासा ।
अहनिसि जिनवर चरचा इनके, धारे अतुल विलासा ॥

दोहा—अब सुनि अहमिंद्रा महा, स्वर्ग ऊपरै जेहि ।
नव ग्रीवक नव अनुदिसा, पंचानुत्तर लेहि ॥
तेईसौं शुभ थान ए, तिनमें चौदा सार ।
नव अनुदिश पंचोत्तरा, ये पावे भवपार ॥
सम्यकदृष्टी देव ए, चौदहथान निवास ।
चौदहमे नहिं पंच से, महा सुखनकी रास ॥
पंचनिमे सरवारथी—सिद्ध नाम है थान ।
सकल स्वर्गको सीस जो ता सम लोक न आन ॥
एकाभवतारी महा, सरवारथसिधि वास ।
तिनसे देव न इन्द्र कोउ, अहमिंद्रा न प्रकाश ॥

कहे देवमें सार ए, तैसे व्रतमे सार।
शील समान न गुरु कहैं, शील देय भवपार॥
देव माहिं जे समकिती, देव देव हैं जेहि।
देव माहिं मिथ्या मती, पशुतें मूरख तेहि॥
नारकमे जे समकिती, तिनसे देव न जांनि।
तिरजंचनिमे श्राविका, तिनसे मिनष न मानि॥
मिनषनमे जे अव्रती, अज्ञानी मतिमन्द।
तिनसे तिरजंचा नहीं, सेवें विषय सुछन्द॥ ७० ॥
मिनषनि माहिं मुनिन्द्रजे, महाव्रती गुणवान।
तिनसे अहमिन्द्रा नही, ताको सुनहु बखान॥
थावर नहिं क्रमिकीटसे, ते सकलिन्द्रीसे न।
पंचेन्द्री नहिं नरनसे, नर जु नरेन्द्र जिसे न॥
महामंडलिकसेन नृप, ते अधचक्री सेन।
अधचक्री नहिं चक्रिसे, ज्ञानवान गण सेन॥
नाहिं गणेन्द्र जिनेन्द्रसे जे सबके गुरुदेव।
इन्द्र फणिन्द्र नरेन्द्र मुनि, करें सुरासुर सेव॥
ते जिनेन्द्र हू वप समैं, करे सिद्धक ध्यान।
सिद्धनिसो संसारमे, नाहिं दूसरो आन॥
सिद्धनिसो यह आत्मा, निश्चय नय करि होय॥
सिद्धलोक दायक महा, नहीं सीलसो कोय।
भूमि न अष्टम भूमिसी, सर्व भूमिके शीश।
कर्म भूमितें पावही, अष्टम भूमि सुनीश॥
द्वीप अढ़ाईसे नहीं, असंख्यात ही द्वीप।

जहा ऊपजै जिनवरा, तीन भुवनके दीप ॥
नहिं जिन प्रतिमा सारिखी, कारण वर वैराग।
नहीं आन मूरति जिसी, कारण दोष रु राग ॥
नहिं अनादि प्रतिमा समा सुन्दर रूप अपार।
नाहिं अकर्तम सारिखे, चैत्यालक विस्तार ॥ ८० ॥
क्षेत्र न आरिज सारिखे, सिद्ध क्षेत्र है सोइ।
भरतैरावत दस सबै, नहिं विदेहसे कोइ ॥
गिरि नहिं सुरगिरि सारिखे, तरु सुरु तरुसे माहि।
नदी सुरनदीसी नहीं, सर्व नदीके मांहि ॥
शिला न पाडुकशिलसमा, जा परि न्हावै शीश।
सिद्ध सिलासी पाडु नहीं, म त्रिभुवनके शीश ॥
उदधि न क्षीरोदधि समा, द्रह पद्मादि जिसे न।
मणि नहि चिन्तामणि समा, कामधेनुसी धेनु ॥
निधि नहीं नवनिधि सारिखी, सो जिननिधिसी नांहि।
नहीं समुद्र गुण सिन्धुसो, है जिन निधि जा माहि ॥
नन्दनादिसे वन नहीं, ते निज वनमे नाहि।
निज बनमे क्रीडा करें ते आनन्द लहाहिं ॥
केवल परिणति सारिखी, नदी कलोलनि कोइ।
निजगंगा सोई गनों ता सम और न होइ ॥
देव न आतम देवसो, गुण आतमसो नाहिं।
धर्म न आतम धर्मसो, गुन अनंतजा माहिं ॥
बाजा दु दुभि सारिखा, नहीं जगतमें और।
राजा जिनवरसो नहीं, तीन भुवन सिरमौर ॥

नाहिं अनाहत तूरसे, देव दुंदुभी तूर ।
सूरन तिनसे जे नरा, डारें मन मथ चूर ॥ ६० ॥
वाहन नहीं विमानसे, फिरें गगनके माहिं ।
नाहिं विमानजु ज्ञानसे जाकरि शिवपुर जाहिं ॥
हीन दीन अति तुच्छ तन, नहिं निगोदिया तुल्य ।
सरवारथसिधि देवसे, भववासी नहिं कुल्य ॥
दीरघ देह न मच्छसे, सरसर जोजन देह ।
चौइन्द्री नहिं भ्रमरसे जोजन एक गनेह ॥
कानखजुन्यासे नहीं ते इन्द्री त्रय कोस ।
बेइन्द्री नहिं संखसे तन अढतालीस कोस ॥
एकेन्द्री नहिं कमलसे, सहसर जोजन एक ।
सब परि करुणा राखिबौ, इह निज धर्म विवेक ॥
घात न कनक समानसो, कोई लगै न जाहि ।
सोहु न चेतन घातसो, नहिं कबहूं बिनसाहि ॥
पारससे पाषाण नहिं, लोहा कनक कराय ।
पारसनाथ समान कोऊ, पारस नाहिं कहाय ॥
ध्यावौ पारसप्रभु महा, बसै सदा जो पास ।
राशि सकल गुण रतनकी, काटै कर्मजु पासि ॥
चातुरमासिक सारिखे, उतपत जीवन आन ।
व्रती जतीसे नाहिं कोऊ, गमन तजें गुणवान ॥
जिन कल्याणक क्षेत्रसे, और न तीरथ जान ।
तेहु न निज तीरथ जिसै, इह निश्चै कर मान ॥ १०० ॥
निज तीरथ निज क्षेत्र है, असंख्यात परदेश ।

तहा विराजै आतमा, जानै भाव असेस ॥
अष्टमि चउदसि सारिखी, परवी और न जानि ।
आष्टाह्निकसे लोकमें, पर्व न कोइ प्रवानि ॥
नंदीसुर सो धाम नहीं, जहा हरख अति होय ।
नंदादिक वापीन सी, नहीं वापिका कोय ॥
नारकसे क्रोधी नहीं, शठ नर सो न गुमान ।
विकल न पशुगण सारिखे, लोभ न दंभ समान ॥
नारकसे न कुरूप कोउ, देवनिसे न सुरूप ।
नरसे धन्धाधर नहीं, नहिं पशुसे बहुरूप ॥
कारण भोग न दानसो, तपसो सुर्ग न मूल ।
हिंसारम्भ समान नहीं कारण नरक सथूल ॥
पशुगति कारण कपटसो, और न सोइ बखान ।
सरल निगर्व सुभाव सो, नरभव मूल न आन ॥
सुख कारण नहिं शुभ समो, अशुभसम नहिं दुखमूल ।
नहीं शुद्धसो लोकमे, मोक्ष मूल अनुकूल ॥
पोसह पडिकमणादि सो, शुभाचरण नहिं होइ ।
विषयकषाय कलकसो अशुभाचरण न कोइ ॥
आतम अनुभव सारिखा, शुद्ध भाव नहीं वीर ।
नहीं अनुभवी सारिखे, तीन भुवनमें धीर ॥१०॥
नारि समान न नागिनी, नारि समान पिचाश ।
नारि समान न व्याधि है, रहैं मूढ़जन राचि ॥
ब्रह्मज्ञानको विश्वमें, वैरी है विभचार ।
ब्रह्मचर्य सो मित्र नहीं, इह निश्चै उर धारि ॥

कायर कृपण समान नहिं, सुभट न त्यागी तुल्य।
रंक न आम्रादाससे, लहै न भाव अतुल्य॥
संत न आशा रहितसे, आशा त्यागे साध।
साध समान अबाध नहिं, करहिं तत्त्व आराध॥
निज गुणसे नहिं भूषण, भूखन चाहि समान।
वस्त्र न दश दिश सारिखे, इह भाखे भगवान॥
भोजन तृपति समान नहिं, भोजन गगन जिसौन।
राजन शिवपुरराज सो, जामें काल धकोन॥
राव न सिद्ध अनन्तसे, साथ न भाव समान।
भाव न ज्ञानानंदसे, इह निश्चै परवान॥
चेतनता सत्ता महा, ता सम पटरानी न।
शक्ति अनतानंतसी, राज लोक जानी न॥
नारकसे दुखिया नहीं, विषयी देव जिसैन।
चिन्तावान मिनससे, असहाई पशुसे न॥
सूक्षम अलभ प्रजापता, जीव निगोद निवास।
ता सम सूक्षम थावर न, इह जिन आज्ञा भास॥ २०॥
अलस्यासे बेइन्द्रिया, और न अलप शरीर।
नहीं कुन्थियासे अलप, ते इन्द्रिय तन वीर॥
काणमच्छिकासे न तुच्छ, चौइन्द्रिय तन धार।
तन्दुलमच्छ समान तुछ, पंचेन्द्रि न विचार॥
चुगली-चोरी अति बुरी, जोरी जारी ताप।
चोरी चमचोरी तथा जूवा आमिष पाप॥
मदिरा मृगया मानना पर महिलासु प्रीति।

परद्रोह परपंच अर पाखंडादि प्रतीत ॥
तजो अभक्षण भक्ष्य अरु, तजौ अगम्यागम्य।
तजौ विपर्जै भाव सहु त्यागहु पाप अरम्य ॥२५॥
इनसी और न कुक्रिया, नरक निगोद प्रदाय।
सकल कुक्रिया त्याग-सो और न ज्ञान उपाय ॥२६॥
ऊज्वल जल गाल्यौ उचित, सोध्यौ अन्न अडंक।
ता सम भक्ष्य न लोकमें भाषें विबुध निशंक ॥२७॥
मद्य मास मधु मांखणा, ऊमरादि फल निंदि।
इनसे अभख न लोकमें, निंदै नर जगवंदि ॥२८॥
वेश्या दासी परत्रिया, तिनसो धारै प्रीति।
एहि अगम्या गम्य है, या सम नहीं अनीति ॥२९॥
होय कलङ्कको सारखे, नाहिं अनीती कोय।
वज्र चक्री सारिखे, नीतिवान नहीं जोय ॥३०॥
गज नहिं कोउ गजेन्द्रसे, मृग मृगेन्द्रसे नाहिं।
खग नहिं कोई खगेंद्रसे, जे अति जोर धराहिं ॥३१॥
बादित्र न कोई वीनसे, सुरपतिसे न प्रवीन।
वाण न कोइ अमोघसे, हिंसकसे न मलीन ॥३२॥
असन न पान पियूषसे, विसन न द्यूत समान।
वस्त्राभरण न लोकमे, देवलोक सम आन ॥३३॥
वाजित्री न महेंद्रसे, पञ्चकल्याणक माहिं।
सदा बजावें राग धरि, गावैं संशय नाहिं ॥३४॥
अस्व नहीं जात्यस्वसे, कटक न चक्रि समान।
अलङ्कार नहिं मुकटसे, अङ्ग न सीस समान ॥३५॥

पाले बाल जु ब्रह्मव्रत, ता सम पुरुष न नारि ।
खोवैं वृद्धहिं ब्रह्मव्रत ता सम पशु न विचारि ॥३६॥
वज्र चक्रसे लोकमे, आयुध और न वीर ।
वज्रायुध चक्रायुधी, तिनसे प्रबल न धीर ॥३७॥
हल मुसलायुध सारिखे, भद्र भाव नहिं भूप ।
नहिं धनुषायुध सारिखे, केलि कुतूहल रूप ॥३८॥
नाहिं त्रिसूलायुध जिमै, और न भयकर कोइ ।
नहिं पहुपायुध सारिखे, महा मनोहर होइ ॥३९॥
धर्मायुधमे धर्मधर, सर्वोत्तम सब नाथ ।
और जानो लोकमे, सकल जिनोंके साथ ॥४०॥
नाहिं व्यभिचारी सारिखा, पापाचारी और ।
नहिं ब्रह्मचारी समा, आचारी सिरमौर ॥४१॥
मायासी कुलटा नहीं, लगी जगमके सङ्ग ।
विरचे क्षणमे पापिनी, परकीया बहु रङ्ग ॥४२॥
नहिं चिद्रूपा सिद्धिसी, सुकिया जगत मंझार ।
नहिं नायक चिद्रूप सो, आनन्दी अविकार ॥४३॥
न्यारी होय न चेतना, है चेतनको रूप ।
राम रूप सी नहिं रमा, रामस्वरूप अनूप ॥४४॥
कनक कामिनी राग ते, लखी जाय नहिं सोइ ।
संयम शील सुभाव तें, ताको दरसन होइ ॥४५॥
सील ओपमा बहुत हैं, कहै कहा लौ कोय ।
जाने श्री जिनराजजू, शील शिरोमणि सोय ॥४६॥
दौलत और न ऋद्धिसी, ऋद्धि न बुद्धि समान ।

बुद्धि न केवल सिद्धिसी, इह निश्चै परवान ॥४७॥

अथ शील स्वरूप निरूपण

कह्यौ दोय विध शीलव्रत, निश्चै अर व्यवहार।
सो धारो उरमे सुधी, त्यागौ सकल विकार ॥ ४८ ॥
निश्चै परम समाधितें, खिसवौ नाहिं कदाचि।
लखिवौ आतमभावको, रहिवौ निजमे राचि ॥४९॥
निज परणति परगट जहा, पर परणति परिहार।
निश्चै शील निधान जो, वर्जित सकल बिकार ॥ ५० ॥
पर परणति जे परणमें, ते विभचारी जानि।
मानि ब्रह्मचारी तिके लेहि ब्रह्म पहिचानि ॥ ५१ ॥
परम सुद्ध परणति विषै, मगन रहै धरि ध्यान।
पावें निश्चै शीलको, भावें आतमज्ञान ॥ ५२ ॥
निज परणति निज चेतना, ज्ञान सरूपा होइ।
दरसन रूपा परम जो, चारितरूपा सोइ ॥ ५३ ॥
जडरूपा जगबुद्धि जो, आपापर न लखेह।
पर परणतिसो जानिये, तन-धन माहिं फसेह ॥५४॥
पर परणतिके मूल ए, राग दोष मद मोह।
काम क्रोध छल लाभ खल, परनिन्दा परद्रोह ॥५५॥
दम्भ प्रपञ्च मिथ्यात मल, पाखण्डादि अनन्त।
इन करि जीव अनादिके, भव भवमे भटकंत ॥५६॥
जो लग मिथ्यापरणती, सठजनके परकास।
तौ लगसम्यकपरणती,—होय न बृह्मविकास ॥५७॥

जोगीरासा ।

तजि विभचारी भाव, सबैही भए ब्रह्मचारी जे ।
ते शिवपुरमें जाय शिरजे, भव्यन भवतारीजे ॥ ५८ ॥
विभचारी जे पापाचारी, ते भरमे भवमें ।
पर परणतिसो रचिया जौलों जाय न सिवमें ॥ ५९ ॥
जगमें पारो जड अनुरागे, लागे नाहीं निजमें ।
कर्म कर्मफलरूपहोय कै, भंवर भ्रम रजमें ॥ ६० ॥
ज्ञान चेतना लखी न अबलों, तत्त्वस्वरूपा सुद्धा ।
जामें कर्म न भर्मकल्पना भाव न एक असुद्धा ॥ ६१ ॥
मिथ्या परणति त्यागै कोई, सम्यकदृष्टी होई ।
अनुभवरसमें भीगै जोई, शीलवंत है सोई ॥ ६२ ॥
निश्चै शील बखान्यूं एई अचल अखंड प्रभावा ।
परम समाधि मई निजभावा, जहा न एक विभावा ॥६३॥

छन्द चाल

अब सुनि व्यवहार सुशीला, धारनमें करहु न ढीला ।
दृढ़ व्रत आखडी धरिवौ नारिको सग न करिवौ ॥ ६४ ॥
नारी है नरकप्रतोली, नारिनमे कुमति अतोली ।
ए महा मोहकी टोली, सेवें जिनकी मति भोली ॥ ६५ ॥
नारी जग-जन-मन चोरै नारी भवजलमें बोरै ।
भव भव दुखदायक जानों, नारीसों प्रीति न ठानों ॥ ६६ ॥
त्यागें नारीको संगा, नहिं करें शीलव्रत भंगा ।
ते पावें मुक्ति निवासा, कबहुं न करें भववासा ॥६७॥
इह मदन महा दुखदाई, याकू जीतें मुनिराई ।

मुनिराय महा बलवंता, मनजीत मानजित संता ॥६८॥
शीलहि सुरपति सिर नावै, शीलहिं शिवपुर जति जावै।
साधू हैं शीलसरूपा, यह शील सुव्रत अनूपा ॥६९॥
मुनिके कछुहू न विकारा, मन वच तन सर्वप्रकारा।
चितवौ व्रत चेतन माहीं, नारीको सपरस नाहीं ॥ ७० ॥
गृहपतिके कछुक विकारा, ताते ए अणुव्रत धारा।
परदारा कवहु न सेवै, परधन कवहु नहिं लेवै ॥ ७१ ॥
जेती जगमे परनारी, वेटी बहनी महतारी।
इह भाति गिनै जो भाई, सो श्रावक शुद्ध कहाई ॥ ७२ ॥
निजदारा पर संतोषा, नहि काम राग अति पोषा।
विरकत भावै कोउ समये, सेवै निज नारी कमये ॥ ७३ ॥
दिनको न करै ए कामा, रात्री कवहुक परिणामा।
मैथुनके समये मवना, नहिं राण करै रति रमना ॥ ७४ ॥
परवी सवही प्रनि पालै, व्रत शील धारि अघ टालै।
अष्टान्हिक तीनों धारै भादवके मास हु सारै ॥
ये दिवस धर्मके मूला, इनमे मैथुन अघ थूला।
अवर हु जे व्रतके दिवसा, पालै इन्द्रिनिके न बसा ॥७६॥
अपने अर तियके व्रत्ता, सबही पालै निरवृत्ता।
या विधि जिननारी सेवै, परि मनमे ऐसे वेवै ॥७७॥
कब तजि हौं काम विकारा, इह कर्म महा दुख भारा।
यामे हिंसा बहु होवै या कर्म करें शुभ खोवै ॥७८॥
जैसे नाली तिल भरिये, रंचहु खाली नहि धरिये।
तातौ कीलो ता माहै, लोहेको संसै नाहे ॥७९॥

घालें तिल भस्म जु होई, यह परतछि देखौ कोई ।
तैसे ही लिङ्ग करि जीवा, नासें भग माहिं अतीवा ॥८०॥
तातें यह मैथुन निंद्या, याकों त्यागे जगवंद्या ।
धन धन्निभाग जाको है, जो मैथुनते जु वच्यौ है ॥८१॥
जे बाल ब्रह्मव्रत धारें, आजनम न मैथुन कारे ।
तिनके चरननकी भक्ती, दे भव्यजीवकूं मुक्ती ॥८२॥
हमहू ऐसे कब होहैं, तजि नारी व्रत करि सोहैं ।
या मैथुनमे न भलाई, परतछ दीखै अघ भाई ॥८३॥
अपनीहू नारी त्यागै, जब जिनवरके मत लागै ।
यह देहहु अपनी नाहीं, चेतन बैठो जा माहीं ॥८४॥
तौ नारी कैसे अपनी, यह गुरु आज्ञा उर खपनी ।
या विधि चितवै मन माहीं, कब घर तजि बनकू जाहीं ॥८५॥
जबलों बलवान जु मोहा, तबलों इह मनमथ द्रोहा ।
छाडै नहिं हमसों पापी, ताते ब्याही त्रिय थापी ॥८६॥
जब हम बलवान जु होहैं, मारे मनमथ अर मोहैं ।
असमर्था नारी राखें ॥८७॥
यह भावन नित भावंतो, घर माहिं उदास रहंतो ।
जैसें परघर पाहुणियो, तैसे ये श्रावक गिणियो ॥८८॥
वह तौ घर पहुंचौ चाहै, यह शिवपुरको जु उमा है ।
अति भाव उदासी जाको, निज चेतनमें चित ताको ।८९।
छाडै सब राग रु दोषा, धारै सामायक पोषा ।
कबहू न रत्त है मगन त्रियासों न रमे ।९०।
मुख आदि विकारा जे हैं, छाड़े नर ज्ञानी ते हैं ।

इह त्रिय सेवन विधि भाखी, बिन पाणिग्रह नहिं राखी ।९१।
श्रावकव्रत धरि सुरपरि ह्वै, सुरपतिते चय नरपति ह्वै ।
पुनि मुनि ह्वै पावै मुक्ती, यह शील प्रभाव सु जुक्ती ।९२।
नहिं शील सारिखौ कोई, दे सुरपुर शिवपुर होई ।
जे बाल ब्रह्मचारी है, सम्यकदर्शन धारी हैं ।९३।
तिनके सम है नहिं दूजा, पावै त्रिभुवन करि पूजा ।
जे जीव कुशीले पापा, पावे भव भव संतापा ।९४।
विभचारी तुल्य न होई, अपराधी जगमे कोई ।
ह्वै नरक निगोद निवासा, पापनिका अति दुख भासा ।९५।
जेते जु अनाचारा हैं, विभचार पिछै सारा हैं ।
त्यागौ भविजन विभचारा, पालौ श्रावक आचारा ।९६।
दोहा—मुख्य बारता यह भया, बाल ब्रह्मव्रत लेय ।
जो यह ब्रत धार न सके, तौ इक ब्याह करेय ।९७।
दूजी नारि न जोग्य है, व्रतधारिनको वीर ।
भोग समान न रोग हैं, इह धारै उर धीर ।९८।
जो अभिलाषा बहुत है, विषयभोगकी जाहि ।
तौ विवाह औरहु करै, नहिं परदारा चाहि ।९९।
परदारा सम पाप नहिं, तीनलोकमे और ।
जे सेवें परनारिको, लहैं नर्कमें ठौर ।१००।
नरक माहिं बहु काललो, दुख देवें अधिकाय ।
वज्रागनि पुतलीनिसो, तिनको अंग तपाय ।१।
जरि-जरि तिनकी देह जो जैसेको तैसोहि ।
रहै सागरावधि तहा, दु:ख सहंता सोहि ।२।

कहिवेमें आवें नहीं, नरकवासके कष्ट।
ते पावें पापी महा, परदारातें दुष्ट।३।
नारकके बहु कष्ट लहि, खोटे नर तिर होय।
जन्म-जन्म दुरगति लहैं, दुख देखैं अघ सोय।४।
अर या ही भवमे सठा, अपजस दु:ख लहेय।
राजदण्ड परचण्ड अति, पावें परतिय सेय।५।

बेसरी छंद

जगमे धन वल्लभ है भाई, धनहुते जीतब अधिकाई।
जीतवतें लज्जा है वल्लभ, लज्जातें नारी नर दुल्लभ।६।
जे पापी परदारा सेवें, ते बहुतनिकी लज्जा लेवें।
बैर बढै जु बहुसेती वीरा, परदारा सेवें नहिं धीरा।७।
धन जीतब लज्जा जस माना; सर्व जाय या करि बृत ज्ञाना।
कुलकों लागै बड़ो कलंका, या अघको निंदैं अकलङ्का।८।
परनारीरत पापिनकों जे, दस वेगा उपजे मन सों जे।
चिन्ता अर देखन अभिलाषा, फुनि निसास नाखन भी भाषा ९
कामज्वर होवै परकासा, उपजै दाह महादुख भासा।
भोजनकी रुचि रहै न कोई, बहुरि महामूरछा होई।१०।
तथा होय सो अति उनमत्ता, अंध महा अविवेक प्रमत्ता।
जानौं प्राण रहनको संसै, अथवा छूटै प्राण निसंसै।११।
कहे वेग ए दश दुखदाई, विभचारीके उपजें भाई।
कौलग वर्णन काजै मित्रा, परदारा सेवें न पवित्रा।१२।
इही पाप है मेरु समाना, और पाप है सरस्यूं दाना।
याके तुल्य कुमर्म न कोई, सर्व दोषको मूल जुहोई।१३।

नर तेही परदारा त्यागे, नारी जे पर पुरुष न लागे।
सर्वोत्तम वह नारि जु भाई, बृह्मचर्य्य आजन्म धराई ।१४।
ब्याह करै नहिं जो गुणवन्ती, विषय भाव त्यागै गुणवन्ती।
बृाह्मी सुन्दरि ऋषभ सुता जे, रहित विकार सुधर्म रता जे ।१५
चेटक पुत्री चदनबाला, बृह्मचारिणी बृत्त विशाला।
बहुरि अनन्तमती अति शुद्धा, वणिक सुता बृत्त शील प्रबृद्धा १६
इत्यादिक जो कीर्ति चितावे, निरमल निरदूषण बृत पाले।
महा सती जाकै न विकारी विषयन ऊपरि भाव न टारी ।१७।
आतम तत्व लख्यौ निरवेदा, काम कल्पना सबै निषेदा।
पुरुष लखै सहु सुत अरु भाई, पिता समाना रञ्च न काई ॥१८॥
धारै बाल बृह्मव्रत शुद्धा, गुरुप्रसाद भई प्रतिबुद्धा।
ऐसी समरथ नाहीं पावै, तो पतिव्रत ब्रत्त धरावे ॥ १९ ॥
मात पिताकी आज्ञा लेती, एक पुरुष धारै विधि सेती।
पाणिग्रहण कर सो कुलवन्ती, पतिकी सेव करै गुणवन्ती ॥२०॥
और पुरुष सहु पिता समाना, कै भाई पुत्रा करि माना।
मेघेश्वर राजाकी राणी, तथा रामकी राणी जाणी ॥२१॥
श्रीपाल भूपतिकी नारी, इत्यादिक कीरति जु चितारी।
जगसो विरकत भाव प्रवर्तै, औसर पाय सिताब निवर्तै ॥२२॥
मैथुनको जानें पशुकर्मा, यह उत्तम नारिनको धर्मा।
तजि परिवार जु सम्यकवन्ती, हूवै आर्या तप संजमवन्ती ॥२३॥
ज्ञान विवेक विराग प्रभावै, स्त्रीपद छाडि स्वर्गपुर जावै।
सुरग माहिं उतकिष्टा सुर ह्वै, बहुत काल सुख लहि फुनिनरह्वै
धारै महाव्रत निज ध्यावै, कर्म काटि शिवपुरको जावै।

शिवपुर सिद्धक्षेत्रकू कहिए और न दूजौ शिवपुर लहिये ॥२५॥
शिव है नाम सिद्ध भगवन्ता, अष्टकर्म हर देव अनन्ता।
मुक्ति मुक्तिदायक इह शीला, या धरवेमें ना कर ढीला ॥२६॥
शील सुधारस पान करै जो, अजरामर पद काय धरै जो।
शील विना नारी धृग जन्मा, जन्म जन्म पावे हि कुजन्मा ॥२७।
रानी राव जशोधर केरी, शील बिना आपद बहुतेरी।
लही नरकमें तानें त्यागौ, कहै कुशीलपथ मति लागौ ॥२८॥
शील समान धर्म जु होई, नाहिं कुशील समौ अब कोई।
जे नर नारि शीलव्रत धारें, ते निश्चै परब्रह्म निहारें ॥२९॥
त्यागे दशो दोष व्रतवन्ता, ते मुनि एक चित्त करि सन्ता।
अंजन मंजन बहु सिंगारा, करना नहीं व्रतिनको भारा ॥३०॥
तजिवो तिनको असन गरिष्ठा, अर तजिवौ संसर्ग सपष्टा।
नरको नारीको संसर्गा, नारिनकों उचित न नरवर्गा ॥३१॥
ह्वै संसर्ग थकी जु विकारा, अर तजिवौ तौर्यत्रिक सारा।
तौर्यत्रिकको अर्थ जु भाई, गीत नृत्य बाजित्र बजाई ॥३२॥
मुनिको इनते कछुहु न कामा, श्रावकके पूजा विश्रामा।
करे जिनेश्वर पदकी पूजा, जिन प्रतिमा बिन और न दूजा ॥३३॥
अष्टद्रव्यसे पूजा करई, तहा गीत वादित्र जु धरई।
नृत्य करै प्रभुजीके आगे, जिनगुनमें भविजन मन लागै ॥३४॥
और न सिंगारादिक गावे, केवल जिनपदसों उर लावे।
नारी-विषयनका संकलपा, तजिवौ बुधकों सर्व विकलपा ॥३५॥
अंग उपंग निरखनों नाहीं, जो निरखै तो दोष धरा ही।
सतकारादिक नारी जनसों, करनों नाहीं मन-वच-तनसो ॥३६॥

पूरव भोग-विलास न चितवौ, अर आगामी वाछा हरिवौ ।
सुपने हू नहिं मन मथ कर्मा, ए दश दोष तजै व्रत धर्मा ॥३७॥
व्रत नहिं शील बराबर कोई, जिनशासनकी आज्ञा होई ।

उक्तं च श्रीज्ञानार्णवमध्ये

आद्यं शरीरसंस्कारो द्वितीयं वृष्यसेवनम् ।
तौर्यत्रिकं तृतीयं स्यात्संसर्गस्तुर्यमिष्यते ॥१॥
योषिद्विषसंकल्पं पंचमं परिकीर्तितं ।
तदंगवीक्षणं षष्ठ सत्कारः सप्तमो मतः ॥२॥
पूर्वानुभूतसंभोग स्मरणं स्यात्तदष्टमम् ।
नवमे भावनी चिन्ता दशमे वस्तिमोक्षणं ॥३॥

कवित्त ।

तिय-थल-वासि प्रेमरुचि निरखन, देखि रीझ भाषन मधु बैन ।
पूरब भोग केलिरस चितवन, गरुव अहार लेत चित चैन ।
करि सुचि तन सिंगार बनावत, तिय परजंक मध्य सुखसैन ।
मनमथ कथा उदरभरि भोजन, ऐ नव वाड़ि जानि मत जैन ३८
दोहा—अतीचार सुनि पाच अब, सुनि करि तजि वर वीर ।
जग चौथो व्रत शुद्ध ह्वै, इह भाषें मुनि धीर ॥ ३९ ॥

ब्याह सगाई पारकी, किरिया अव्रतपोष ।
शीलवन्त नर नहिं करे, जिन त्यागे सहु दोष ॥४०॥
इत्वरिका कुलटा त्रिया, ताकी है द्वै जाति ।
परिग्रहीता एक है, जाके सामिल खाति ॥४१
अपरिग्रहीता दूसरी जाके, स्वामि न कोय ।
ए इत्वरिका द्वै विधा, पर पुरुषा-रत होय ॥ ४२ ॥

जिनसों रहनों दूर अति, तिनकों संग तजेय ।
तिनसों संभाषण नहीं तब जनम सुधरेय ॥४३॥
गमन करै नहिं वा तरफ, विचरैं जहां न नारि ।
ढारि नारिको नेह नर, धरै व्रत अघटारि ॥४४॥
तजि अनंगक्रीडा सबै, क्रीडा अघकी एहि ।
मैन मानि मन जीति कर, ब्रह्मचर्य व्रत लेहि ॥ ४५ ॥
निज नारीहूतें सुधी, करै न अधिकी प्रीति ।
भाव तीव्र नहिं कामके, धरै धर्मकी रीति ॥४६॥
कहे अतिक्रम पंच ए, इनमें भला न कोय ।
ए सबही तजिया थका, शील निर्मला होय ॥४७॥
नीली सेठसुता सुमा शीलव्रत परसाद ।
देवन करि पूजा लही, दूरि भयो अपवाद ॥४८॥
शीलप्रभावै जयप्रिया, सुभ सुलोचना नारि ।
लही प्रशंसा सुरनि करि, सम्यकदर्शन धारि ॥४९॥
शील-प्रसादै रामजी, जनकसुता सुभ भाव ।
पूज्य सुरासुर नरनि करि, भये जगतकी नाव ॥५०॥
सेठ बिजय अर सेठनी, विजया शीलप्रसाद ।
भई प्रसंसा मुनिन करि, भये रहित परमाद ॥५१॥
शुक्लपक्ष अर कृष्णपक्ष, धारि शीलव्रत तेहि ।
तीनलोक पूजित भये, जिन आज्ञा उर लेहि ॥५२॥
सेठ सुदर्शन आदि बहु, सीझे शीलप्रताप ।
नमस्कार या व्रतकों जो मेटै भवताप ॥५३॥
जे सीझे ते शील करि, और न मारग कोय ।

जनम जरा मरणादिको, नाशक यह व्रत होय ॥५४॥
धरि कुशील बहु पापिया, पड़े नरक मंझार ।
तिनको को निरणय करै कहत न आवै पार ॥५५॥
रावण खोटे भाव धरि, गये अधोगति माहिं ।
धवल सेठ नरके गयो, यामे संशय नाहिं ॥५६॥
कोटपाल जमदण्ड शठ, करि कुशील अति पाप ।
गयो नरककी भूमिमे, लहि राजाते ताप ।५७।
बहुरि हुतौ जमदण्ड इक, कोटपाल गुणवन्त ।
नीति धर्म परभावते, पायौ जस जयवंत ।५८
सर्व गुणा हैं शीलमे, अरु कुशीलमे दोष ।
नाहिं कुशील समान कोउ, और पापको पोष ।५९।
इन दोउनके गुण अगुण, कहत न आवै थाह ।
जाने श्री जिनराय जू, केवल रूप अथाह ।६०।
महिमा शील महंतको, कहैं महा गणधार ।
भाषै श्री जिन भारती, रटै साधु भव तार ।६१।
सरवारथसिधिके महा, अहमिन्द्रा परवीन ।
गावें गुण व्रत शीलके, जे अनुभव रसलीन ।६२।
कथे काति इन्द्रादिका, जपें सुजस जोगीन्द्र ।
लौकान्तिक बरणन करें, रटें नरिन्द्र फणीन्द्र ।६३।
चन्द सूर सुर असुर खग, महिमा शील करेय ।
सूरि मत अध्यापका, मन वच काय धरेय ।६४।
हमसे अलपमती कहा, कैसे गुण बरणेह ।
नमो नमो व्रत शीलको, रहैं ऋषी नरणेय ।६५।

दया सत्य अस्तेय अर, शीलै करि परिणाम।
भाषों पञ्चम व्रत जो परिग्रह त्याग सुनाम ॥ ६६ ॥
इति चतुर्थव्रतनिरूपण।
इन चारनि बिन ना हुवै, परिग्रहके परिहार।
परिग्रहके परिहार बिन, नहिं पावे भवपार ॥ ६७ ॥
मुनिको सर्वहि त्यागवौ, अंतर बाहिज संग।
धर्म अकिंचन धारिवौ, करिवौ तृष्णाभङ्ग ॥ ६८ ॥
अपने आतम भाव बिनु, जो पररूपा वस्तु।
सो परिग्रह भाषौ सुधी, ताको त्याग प्रसस्त ॥ ६९ ॥
सर्व भेद चउवीस हैं, चउदह अर दस भेलि।
अंतर बाहिज संग ये, दुरगति फलकी बेलि ॥ ७० ॥
परिग्रह द्वै विध त्यागिये, तब लहिये निज भाव।
ब्रह्मज्ञानके शत्रु ये, नर्क निगोद उपाय ॥ ७१ ॥
अंतरङ्ग परिग्रहतनें, भेद चतुर्दश जान।
मिथ्यात्वादिक जो सबै, जिन आज्ञा उर आन ॥७२॥
राग दोष मिथ्यात अर, चउ कषाय क्रोधादि।
षट हास्यादिक वेद फुनि, चउदस भेद अनादि ॥७३॥
राग कहावे प्रीति अरु, दोष होइ अप्रीति।
राग दोष तज भव्यजन, धरै धर्मकी रीति ॥ ७४ ॥
जहा तत्त्व श्रद्धा नहीं, सो मिथ्यात्व कहाय।
जड़ चेतनको ज्ञान नहीं, भर्मरूप दरसाय ॥ ७५ ॥
क्रोध मान छल लोभ ये, चउ कषाय बलवन्त।
हतिये ज्ञान सुबानतें, लहिये भाव अनन्त ॥ ७६ ॥

हास्य अरति अरु शोक भय, बहुरि गलानि बखान।
तजिये षट हास्यादिका, मोह प्रकृति दुखदानि ॥ ७७ ॥
वेद भेद हैं तीन फुनि, पुरुष नपुंसक नारि।
चेतनतें न्यारे लखौ, जिनवानी उर धारि ॥ ७८ ॥
एक समय इक जीवके, उदय होय इक वेद।
तातें गनिये वेद इक, यह गाव निरवेद ॥७९॥
संख असंख अनन्त हैं, इनि चउदहके भेद।
अन्तरंग ये सग तजि, करिये कर्म विछेद ॥ ८० ॥
अन्तर संग तजे बिना, होई न सम्यक ज्ञान।
बिना ज्ञान लोभ न मिटै, इह भाषै भगवान ॥८१॥
अत सुनि बाहर संगजे, दसधा हैं दुखदाय।
मुनिने त्यागे सर्व ही, दीये दोष उड़ाय ॥ ८२ ॥
क्षेत्र वास्तु चौपद द्विपद, धान्य द्रव्य कुप्यादि।
भाजन आसन सेज ये, दस परकार अनादि ॥ ८३ ॥
तजें संग चउवीस सहु, भजें नाथ चउवीस।
सजें साज शिवलोकको, सबमें बड़े मुनीस ॥ ८४ ॥
मूर्च्छा ममता सहु तजी, तृष्णादई उडाय।
नगन दिगम्बर भव तिरें, धरें न बहुरो काय ॥८५॥
श्रावकके ममता अलप, बहुतृष्णाको त्याग।
राग नहीं पर द्रव्यसों, एक धर्मको राग ॥ ८६ ॥
धरम हेत खरचे दरब, गर्व नाहिं मन माहिं।
सब जीवनसो मित्रता, दुराचारता नाहिं ॥ ८७ ॥
जीव दयाके कारणें, तजौ बहुत आरम्भ।

परिग्रहको परिमाण करि, तजौ सकल ही दम्भ ॥८८॥
लोभ लहरि मेटी जिनौ धरयौ धर्म संतोष ।
ते श्रावक निरदोष हैं, नहीं पापको पोष ॥ ८९ ॥
क्षेत्र आदि दस संगको, कियो तिने परिमाण ।
राख्यौ परिग्रह अलप ही, तिन सम और न जाण ॥९०॥
कह्यौ परिग्रह दस विधा, वहिरङ्गा जे वीर ।
तिनके भेद सुनू भया, भाखें मुनिवर धीर ॥ ९१ ॥

चौपाई—खेत्र परिग्रह खेत्र बखान, जहा ऊपजे धान्य निधान ।
वास्तु कहावे रहवा तना, मन्दिर हाट नौहरा वना ॥९२॥
हस्ती घोटक ऊंटरु आदि, गाय बलघ महिषी इत्यादि ।
होय राखणों जो तिरजंच, चौपद परिग्रह जानि प्रपंच ॥९३॥
द्विपद परीग्रह दासी दास, पुत्र कलत्रादिक परकास ।
धान्य कहावे गेहूं आदि, जीवन जनको अन्न अनादि ।९४।
धन कनकादिक सबही धात, चिंतामणि आदिक मणि जात ।
चौवा चन्दन अगर सुगन्ध, अतर अरगजा आदि प्रबंध ।९५।
तेल फुलेल घृतादिक जेह, बहुरि वस्त्र सब भाति कहेह ।
ये सब कुप्य परिग्रह कहे, संसारी जीवनितें गहे ॥ ९६ ॥
भोजन नाम जु वासन होय धातु पषाण काठके कोय ।
माटी आदि कहा लग कहैं, साधन भाजनके सहु गहैं ॥९७॥
आसन वैसनके बहु जान, सिंघासन प्रमुखा परवान ।
गद्दी गिलम आदि जेतेक, त्यागौ परिग्रह धारि विवेक ॥९८॥
सज्या नाम सेजको कह्यौ, भूमिशयन मुनिराजनि गह्यौ ।
ए दसधा परिग्रह द्रुय रूप, केइक जड़ केइक चिद्रूप ॥ ९९ ॥

द्विपद चतुसपद आदि सजीव, रतन धातु वस्त्रादि अजीव ।
अपने आतमतें सब भिन्न, परिग्रहतें ह्वै खेद जु खिन्न १००
है परिग्रह चिन्ताके धाम, इनकों त्याग लहैं शिवठाम ।
जिनवर चक्री हलधर धीर, कामदेव आदिक वर बीर ॥१॥
तजि परिग्रह धारें मुनिरूप, मुनिसम और न धर्म अनूप ।
मुनि होवेकी शक्ति न होय, श्रावक व्रत धारै नर सोय ॥२॥
करै परिग्रहको परमाण, त्यागै तृष्णा सोहि सुजाण ।
इह परिग्रह अति दुखको मूल, है सुखते अतिही प्रतिकूल ॥३॥
जैसे बेगारी सिर भार तैसें यह परिग्रह अधिकार ।
जेतौ थोरौ तेतौ चैन, यह आज्ञा गावैं जिन बैन ॥ ४ ॥
तातें अल्पारम्भी होय, अल्प परिग्रह धारे सोय ।
ताहूको नित त्यागो चहै, मन माहीं अति विरकत रहै ॥ ५ ॥
जैसें राहु केतु करि कान्ति, रवि शशिको ह्वै और हि भांति
तैसें परणति होय मलीन, आतमकी परिग्रह करि दीन ॥६॥
ध्यान न उपजै या करि कबै, याहि तजें पावैं शिव सबै ।
समताको यह बैरी होय, मित्र अघोरपनाको सोय ॥ ७ ॥
मोह तनों विश्राम निवास, यातें भविजन रहहिं उदास ।
नासै सुखकों सुभतें दूर, असुभ भावतें है परिपुरि ॥ ८ ॥
खानि पापकी दुखकी रासि, रह्यौ आपदाको पद भासि ।
आरतिरुद्र प्रकाशक अंग, धर्म ध्यानको धरइ न संग ।
गुण अनंत धन धारयो चहै, सो परिग्रहते दूरहि रहै ॥ ९ ॥
दोहा—लीलावन दुरध्यानको, बहु आरम्भ सरूप ।
आकुलताकी निधि महा, संसैरूप विरूप ॥ १० ॥

मदका मन्त्री काम घर, हेतु शोकको सोइ।
कलह तनो क्रीडा ग्रह, जनक बैरको होइ ॥ ११ ॥
धन्य घरी वह होयगा, जब तजियैगो सङ्ग।
यामें बडपन नाहिं कछु, महा दोषको अङ्ग ॥ १२ ॥
हिंसादिक अपराधका, कारण मूल बखानि।
जनम जनममे जीवको, दुखदाई सो जानि ॥ १३ ॥
धृग धृग द्विविधा संगको, जो रोके शिव सङ्ग।
चहुंगति माहिं भ्रमाय करि, करै सदा सुख भङ्ग ॥१४॥
जो यामें बडपन गिनै, सो मूरख मतिहीन।
परिग्रह वान समान नहिं, और जगतमें दीन ॥ १५ ॥
धन्य धन्य धरमज्ञ जे, याकू तुच्छ गिनेय।
माया ममता मूरछा, सर्वारम्भ तजेय ॥ १६ ॥
यही भावना भावतो, भविजन रहै उदास।
मनमे मुनिव्रतकी लगन, सो श्रावक जिनदास ॥ १७ ॥
बहुरि बिचारै सो सुधी, अगनि धरै गुण शीत।
जो कदापि तौहु न कबै, परिग्रहवान अभीत ॥ १८ ॥
कालकूट जो अमृता, होइ दैव सयोग।
नहिं तथापि सुख होय ते, इन्द्रियनके रसभोग ॥ १९ ॥
विषयनिमे जे राचिया, ते रुलिहैं भव माहिं।
सुख है आतम ज्ञानमें, विषय माहिं सुख नाहिं ॥ २० ॥
थिर ह्वै तड़ित प्रकाशजी, तौहु देह थिर नाहिं।
देह नेह करिवौ वृथा, यह चितवै मनमाहिं ॥२१॥
इन्द्रजाल जो सत्य ह्वै, दैवयोग परवान।

तौ पन संसारी जना, नाहिं कदे सुखवान ॥ २२ ॥
चहुंगतिमे नहिं रम्यता, रम्य आतमाराम।
जाके अनुभवतें महा, है पञ्चमगति धाम ॥ २३ ॥
इह विचार जाके भयौ, देहहु अपनी नाहिं।
सो कैसे परपञ्च करि, बूडै परिग्रह माहिं ॥ २४ ॥

सवैया तेईसा

हय गय पायक आदि परिग्रह, पुण्य उद गृह होय विभौ अति।
पाय विभौ फुनि मोहित होत, सरूप विसारि करें परसों रति ॥
नारहि पोषण कारण काज, रच्यौ बहु आरंभ बाधक दुर्गति।
ज्ञानि कहै हमकूं कबहू मन, राम वहै फुनि देहहु धो मति ॥ २५ ॥
नाहिं संतोष समान जु आन है, श्रीभगवान प्रधान सुधर्मा।
है सुखरूप अनूप इहै गुण, कारण ज्ञान हरै सब कर्मा ॥
पापनिको यह बाप जु लोभ, करै अतिक्षोभ धरै अति मर्मा।
धारि संतोष लहै गुणकोष, तजै सब दोष लहै विजमर्मा ॥ २६ ॥
रंक सबै जग राव रिषीसुर, जो हि धरै शुभ शील संतोषा।
सो हि लहै निज आतम भेद, करै अघ छेद हरें दुख दोषा ॥
श्रावक धन्य तजै सहु अन्य, हुए जु अनन्य गहै गुण कोषा ॥
काम न मोह न लोभ न लेश, नहिं मान दहै रति रोषा ॥ २७ ॥
लोभ समान न औगुण आन, नहीं चुगली सम पाप अरूपा।
सत्य हि बैन कहै मुखतें सुभ, तो सम व्रत्त न तप्प निरूपा ॥
पावन चित्त समान न तीरथ, आतम तुल्य न देव अनूपा।
सज्जनता सम और कहा गुण, भूषण और न कीरति रूपा ॥ २८ ॥
[illegible] सुध्यान समान कहा धन, औजस तुल्य न मृत्यु कहाई।

देविनिको गुरु देव दयानिधि, तासम कोई न है सुखदाई ॥
रोष समान न दोष कहैं बुध, मोक्ष समान न आनन्द भाई ।
तोष समान न कारण मोक्ष, कहैं भगवन्त कृपा उर छाई ॥ २९ ॥
अंग प्रसंग भये बहु संग, तिनौ मंहि नाह अभंग जु कोई ।
सुद्ध निजातम भाव अखंडित, ता मंहि चित्त धरै बुध सोई ॥
बंध विदारण, दोष निवारण, लोक उधारण और न होई ।
जा सम कोई न जान महामति, टारइ राग विरोध जु दोई ॥ ३० ॥

दोहा—धन्य धन्य श्रावक व्रती, जो समकित धर धीर ।
तन धन आतम भावतें, न्यारे देखै वीर ॥३१॥
तन धनको अनुराग नहिं एक धमको राग ।
संतोषी समता धरो, करै लोभको त्याग ॥ ३२॥
मोह तनी ग्यारह प्रकृति शात होय जब वीर ।
तब धारै श्रावकव्रता, तृष्णा वर्जित धीर ॥३३॥
तीन मिथ्यात कषाय वसु, ये ग्यारह परवान ।
पंचम ठानें श्रावका, इनते रहित सुजान ॥३४॥
गई चौकरी द्वय प्रबल, जे दुरगति दुखदाय ।
रहो चौकरी द्वय अबै, तिनको नाश उपाय ॥ ३५ ॥
चितवै मनमे साम्रती, है जौलग अवसाय ।
तौलग तीजी चौकरी उदै धरै रहवाय ॥ ३६ ॥
अल्प परिग्रह धारई, जाके अल्पारम्भ ।
अवसर पाय सिताब ही, त्यागै सर्वारम्भ ॥ ३७ ॥
मुनिव्रतके परसाद शिव—ह्वै अथवा अहमिन्द्र ।
श्रावकव्रत प्रभावतें, सुर ह्वै तथा सुरिन्द्र । ३८ ॥

परिग्रहको परमाण करि, जयकुमार गुणधार ।
सुर–नर कर पूजित भयौ, लह्यौ भवोदधि पार ॥ ३६ ॥
परिग्रहकी तृष्णा करे, लब्धदत्त गुणवीत ।
गयौ दुरगती दुख लहे त्यों समश्रु नवनीत ॥ ४० ॥
करै जु संख्या भगकी, हरै देहतें नेह ।
अति न भ्रमावे नर पसू, गिनै आपसम तेह ॥ ४१ ॥
बोझ बहुत नहिं लादिवो, करनों बहुत न लोभ ।
अति संग्रह तजिवौ सदा, करनों बहुत न क्षोभ ॥ ४२॥
अति विस्मय नहिं धारिवौ, रहनो नि सन्देह ।
झूठी माया जगतकी, अचिरज नाहिं गनेह ॥ ४३ ॥
परिग्रह संख्यावरतके, अतीचार हैं पंच ।
तिनकूं त्यागे जे व्रती तिनके पाप न रंच ॥ ४४ ॥
क्षेत्र वस्तु संख्या करी, ताकों करै उलंघ ।
अतीचार है प्रथम यह, भाषै चउविधि संघ ॥ ४५ ॥
काहु प्रकारे भूलि करि, जोहि उलंघै नेम ।
अतीचार ताकों लगै, भाषै पण्डित एम ॥ ४६ ॥
द्विपद चतुष्पद संगको, करि प्रमाण जो वीर ।
अभिलाषा अधिको धरै, सो न लहै भवतीर ॥ ४७॥
अतीचार दूजो इहै, सुनि तीजो अघरास ।
धन धान्यादिक वस्तुको करि प्रमाण गुरुपास ॥ ४८ ॥
चित संकोच सकै नहीं, मन दौरावै मूढ ।
सो न लहै व्रत शुद्धता, होय न ध्यानारूढ ॥ ४६ ॥
इम राख्यौ परिग्रह अलप, सरै न एते माँहि ।

ऐसे विकल्प जो करो वर्तमान सो नाहिं ॥ ५० ॥
कूप भांड परिग्रह तनों, करि प्रमाण तन धारि ।
चित्त चाहि मैटै नहीं, सो चौथो अतिचार ॥ ५१ ॥
शायन नाम सज्या तनों, आसन द्वय विधि होय ।
थिर आसन चर आसना, करें प्रमाण जु कोय ॥ ५२ ॥
फुनि अधिकों अभिलाष धरि, लावै व्रतहीं दोष ।
अतीचार सो पंचमो, रोकै मारग मोष ॥ ५३ ॥
थिर आसन सिंहासनों, ताहि आदि बहु जानि ।
त्यागै चक्रीमंडली, जिन आज्ञा उर आनि ॥ ५४ ॥
स्यंदन कहिये रथ प्रगट, सिव्रका है सुखपाल ।
ए थलके चर आसना, त्यागै भव्य भुपाल ॥ ५५ ॥
बहुरि बिमानादिक जिके, चर आसन शुभरूप ।
ते अकासके जानिये, त्यागें खेचर भूप ॥ ५६ ॥
नाव जिहाजादिक गिनें, चर आसन जल माहिं ।
चर आसनकों पण्डिता, यान कहै सक नाहिं ॥ ५७ ॥
सकल परिग्रह त्यागिवौ, सो मुनिमारग होय ।
किंचित मात्र जु राखिवौ, व्रत श्रावकको सोय ॥ ५८
व्याधि न तृष्णा सारखी, तृष्णासी न उपाधि ।
नहिं सन्तोष समान है, कारण परम समाधि ॥ ५९ ॥
तृष्णा करि भववन भ्रमैं, तृष्णा त्यागैं सन्त ।
गृह परिग्रह बन्धन गिनैं, ते निर्वाण लहंत ॥ ६० ॥
व्रत पाचमो इह कह्यों, सम सन्तोषस्वरूप ।
धन्य धन्य ते धीर हैं, त्यागैं लोभ विरूप ॥ ६१ ॥

जे सीझे ते लोभ हरि, और न मारिग होय।
मोह प्रकृतिमें लोभ सो, और न परबल कोय ॥ ६२ ॥
सर्व गुणनिको शत्रु है, लोभ नाम बलवन्त।
ताहि निवारें व्रत ए, करें कर्मको अन्त ॥ ६३ ॥
नमस्कार संतोषको, जाहि प्रशंसें धीर ॥
जाकी महिमा अगम है, जा सम और न बीर ॥६४ ॥
जानैं श्रीजिनरायजू, या व्रतके गुण जेह।
और न पूरन ना लखै, गणधन आदि जिकेह ॥ ६५ ॥
हमसे अल्पमती कहौ, कैसे कहैं बनाय।
नमो नमो या व्रत्तको, जो भव पार कराय ॥ ६६ ॥
सन्तोषी जीवानिको, बार बार परणाम।
जिन पायो संतोष धन, सर्व सुखनिको धाम ॥ ६७ ॥
नहिं सन्तोष समान गुरु, धन नहिं या सम और।
निर विकलप नहिं या सभा, इह सबको सिरमौर ॥ ६८ ॥

इति पञ्चमव्रत निरूपण।

दया सत्य असतेय अर, ब्रह्मचर्य सन्तोष।
इन पाचनिको कर प्रणति, छट्टम व्रत निरदोष ॥ ६९ ॥
भाषो दिसि परिमाण शुभ, लोभ नासिवे काज।
जीवदयाके कारणे, उर धरि श्री जिनराज ॥ ७० ॥
द्वादश व्रतमे पंच व्रत, सप्त शील परवानि।
सप्त शीलमें तीन गुण, चउ शिक्षा व्रत जानि ॥ ७१ ॥
जैस कोट जु नग्रके, रक्षा कारण होय।
तैसें व्रतरक्षा निमित, शील सप्त ये जोय ॥ ७२ ॥

बरत शील धारैं सुधी, ते पावें सुखराशि ।
कहे व्रत अब शीलके, भेद कहौं परकाशि ॥ ७३ ॥
पहलो गुणवत गुणमई, छट्टो व्रत सो जानि ।
दसों दिशा परमाण करि, श्रीजिन आज्ञा मानि ॥७४॥
तीन गुणव्रतमें प्रथम, दिग्व्रत कह्यौ जिनेश ।
ताहि धरें श्रावकव्रती, त्यागें दोष असेस ॥ ७५ ॥
लोभादिक नाशन निमित, परिग्रहको परिमाण ।
कीयौ तैसे ही करौ, दिशि परमान सुजाण ॥ ७६ ॥

बेसरी छन्द ।

पूरब आदि दिशा चउ जानौं, ईशानादि विदिगि चउ मानौं ।
अधं उरध मिलि दस दिशि होई, करै प्रमाण व्रती है सोई ॥७७॥
सीलवान व्रत धारक भाई, जाके दरशनतें अघ जाई ।
या दिशिको एतोही जाऊं, आगे कबहु न पाव धराऊं ॥७८॥
या विधिसों जु दिशाको नेमा, करै सुबुद्धि धरि व्रतसो प्रेमा ।
मरजादा न उलंघे जाई, दिग्व्रत धारक कहिये सोई ॥७९॥
दसो दिशाकी संख्या धारे, जिती दूरलौ गमन विचारै ।
आगै गये लाभ ह्वै भारी, तौपनि जाय न दिग्व्रत धारी ॥८०॥
संतोषी समभावी होई, धनकूं गिनै धूरिसम सोई ।
गमनागमन तज्यो बहु जानै, दया धर्म धार्‌यो उर तानै ॥८१॥
लगै न हिंसा तिनको अधिकी, त्यागी जिन तृष्णा-धन निधिकी ।
कारण हेत चालनो परई, तौ प्रमाण माफिक पग धरई ॥८२॥
मेरु डिगै परि पैंड न एका, जाय सुबुद्धी परम विवेका ।
मूल करि नाश करै अघ कर्मा, प्रगटै परम सरावक धर्मा ॥८३॥

बिना प्रतिज्ञा फल नहिं कोई, रहै बात परगट अब लोई ।
अतीचार पांचों तजि बीरा, छट्ठो व्रत धारौ चित धीरा ॥८४॥
पहले ऊरध व्यतिक्रम होई, ताको त्याग करौ श्रुति जोई ।
गिरि परि अथवा मिंदर ऊपरि, चढनो परई ऊरध भूपरि ॥८५॥
ऊरधको संख्या ह्वै जेती, ऊंची भूमि चढ़ै बुध तेती ।
आगै चढिवेको जो भावा, अतीचार पहलो सु कहावा ॥८६॥
दूजो अधव्यतिक्रम तजि मित्रा, जा तजिये व्रत होइ पवित्रा ।
वापी कूप खानि अर खाई, नीची भूमि माहिं उतराई ॥८७॥
तौ परमाण उलंधि न उतरौ, अधिकी भू उतरया व्रत खतरौ ।
अधिक उतरनेको जो भावा, अतीचार दूजो सु कहावा ॥८८॥
तीजो तिर्यग व्यतिक्रम त्यागौ, तब छट्ठे व्रतमाहीं लागौ ।
अष्ट दिशा जे दिशि विदिशा है, तिरछे गमने माहिं गिना हैं ।८९।
बहुरि सरङ्गादिकमें जावौ, सोऊ तिरछे गमन गिनावौ ।
चउदिशि चउविदिशा परमाणा, ताको नाहिं उलंघ बखाणा ॥९०॥
जो अधिके जावेको भावा, अतीचार तीजो सु कहावा ।
चौथो क्षेत्रवृद्धि है दूषन, ताको त्याग करें व्रतभूषन ॥९१॥
जेती दूर जानका नेमा, सो स्वक्षेत्र भाषे श्रुतिप्रेमा ।
जो स्वक्षेत्रनें बाहिर ठौरा, सो परक्षेत्र कहावे औरा ॥९२॥
जो परक्षेत्र थकी इह संधा, राखै सठमनि हिरदे अंधा ।
ह्वाते क्रय विक्रय जो राखै, क्षेत्रवृद्धि दूषण गुरु भाखे ॥९३॥
पञ्चम अतिचारकौ नामा, स्मृत्यंतर भासै श्रीरामा ।
ताको अर्थ सुनों मनलाई, करि परमाण भूलि जो जाई ॥९४॥
जानत और अजानत मूढा, सो नहिं होई व्रत आरूढा ।

ए पाचूं दोषा जे टारें, ते व्रत निर्मल निश्चल धारें ॥ ६५ ॥
श्री कहिये निजज्ञान विभूती, शुद्ध चेतना निज अनुभूती ।
केवल सत्ता शुद्ध स्वभावा, आतमपरणति रहित विभावा ॥ ६६॥
ता परणतिसो रमिया जोई, कर्मरहित श्रीराम जु होई ।
तिनकी आज्ञानुरूप जु धर्मा, धारें ते नाशें सब भर्मा ॥ ६७ ॥
अब सुनि व्रत्त सातमों भाई, जो दूजो गुणव्रत्त कहाई ।
दिशा तणों कियौ परिमाणा, तामे देश प्रमाण बखाणा ॥ ६८ ॥
देश नगर अर गाव इत्यादी, अथवा पाटक हाट जु आदी ।
पाटक कहिये अध जु ग्रामा, करै प्रमाण व्रती गुण धामा ।६६।
जिन देशनिरू धर्म जु नाहीं, जाय नहीं तिन देशनि माहीं ।
जब वह बहु देशनिते छूटै, तब यासों अति लोभ जु टूटै ।१००।
बहु हिंसा आरंभ निवर्त्यौ, जीवदया मन माहिं प्रवर्त्यौ ।
दिश अरु देशनिको जु प्रमाण,।, लोभ नाशने निमित्त बखाना ।१॥
जिनवर मुनिवर अर जिन धामा, जिनप्रतिमा अर तीरथठामा ।
यात्राकाज गमन निरदोषा, दीप अढ़ाई लौं व्रतपोसा ॥२॥
अतीचार पाचों तजि धीरा जाकरि देश व्रत ह्वै धीरा ।
चित परसल रोकनके कारन, मन वच तन मरजादा धारन ।३।
कबहूं नहिं उलंघि सु जाई, अर ह्यातैं आसा न धराई ।
प्रेष्य नाम है सेवकको जी, तहि पठावौ जो अधिको जी ॥४॥
वस्तु भेजिवौ लोभ निमित्ता, प्रेष्य प्रयोग दोष है मित्ता ।
तातें जेतौ देश जु राख्यौ, भृत्य भेजिवौ ह्यातक राख्यौ ॥ ॥
आगे वस्तु पठैवौ नाहीं, इह बातें धारौ उर माहीं ।
दूजो दोष आनयन त्यागै, तब हि व्रत विधानहिं लागै ॥६ ॥

परक्षेत्र जु तें वस्तु मंगावै सो गुणव्रतको दूषण लावै।
जो परमाण बाहिरा ठौरा, सा परक्षेत्र कहैं जपमौरा ॥७॥
तीजो दोष शब्दविनिपाता, ताको भेद सुनो तुम भ्राता।
जय नहीं परि शब्द सुनावै, सो निरदूषण व्रत्त न पावै ॥८॥
चौथा दूषण रूपनिपाता रूप दिखावण जागि न बाता।
पंचम पुगद्लक्षेप कहावै, कंकर आदिक जोहि वगावै ॥६॥

भावार्थ—

दिशा अर देशको जावजीव नियम कियो छै, तीहूमें वर्ष छमासी दुमासी मासी पाखी नेम धार्योछै, तीमैं भी निति नेम करै छै। सो निति नेम मरजादामे क्षेत्र निपट थोडा राख्यो सो गमन तौ मरजादा बाहिर क्षेत्रसे न करै परि हेलौ मारि सबद सुनावै अथवा जिह तरफ जिह प्रातीसों प्रयोजन होय तिह तरफ झाकि झरोकादिकमे बैठि करि तिंह प्राणीनें अपना रूप दिखाय प्रयोजन जणावे अथवा कंकर इत्यादि वगाय पैलाने मतलब जतावै सो अतीचार लगाय मलीन करै।

बेसरी छंद।

अब सुनि वरत आठमो भाई, तीजो गुणव्रत अति सुखदाई।
अनरथदण्ड पापको त्यागा, यह व्रत धारे ते वडभागा ॥ ०॥
पंच भेद हैं अनरथदोषा, महापापके जानहु पोषा।
पहलो दुर्ध्यान जु दुखदाई, ताको भेद सुनों मनलाई ॥११॥
परऔगुण गहणा उरमाहीं, परलक्ष्मी अभिलाष धराहीं।
परनारी अवलोकन इच्छा, इन दोषनतें सुधी अनिच्छा ॥१२॥
कलह करावन करन जु चाहैं, बहुरि अहेरा करन उमाहै।

हारि जाति चितवै काहूका, करै नहीं भक्ति जु साहूको ॥१३॥
चौर्यादिक चितवै मनमाहीं, दुरगति पावै शक नाहीं ।
दूजो पापतनों उपदेशा, सो अनरथ तजि भजै जिनेशा ॥१४॥
कृषि पसु धन्धा वणिज इत्यादी, पुरुष नारि संजोग करादी ।
मंत्र यंत्र तंत्रादिक सर्वा, तजौ पापकर वचन सगर्वा ॥१५॥
सिंगारादिक लिखन लिखावन, राजकाज उपदेश बतावन ।
सिलपि करम आदिक उपदेशा, तजो पाप कारिज उपदेशा ।१६
तजहू अनरथ विफला चरज्या, सो त्यागौ श्रीगुरुनें बरज्या ।
भूमिखनन अरु पानी ढारन, अगनि प्रजालन पवन विलोरन ।१७
वनसपती छेदन जो करनों, सो विफला चरज्याकों धरनों ।
हरित तृणांकुर दल फल फूला, इनको छेदन अघको मूला॥१८॥
अब सुनि चोथो अनरथदण्डा जा करि पावौ कुगति प्रचण्डा ।
दया दान करित्रा जु निरंतर इह बाता धारौ उर अन्तर ।
हिंसादान नाम है जाको, त्याग करो तुम बुध जन ताको ।१९॥
छुरी कटारी खडगरु भाला, जुनी आदिक देहिन लाला ॥२०॥
विष नहिं देवौ अगनि न देनी, हल फाल्यादिक दे नहिं जैनी ।
धनुषवान हि देनों काको, जो दे अघ लगै अति ताकों ॥२१॥
हिंसाकर जेती वस्तू, सो देवो तौ नाहिं प्रसस्तू ।
बध बंधन छेदन उपकरणा, तिनको दान दयाको हरणा ॥२२॥
पापवस्तु मांगी नहिं देवै, जो देवै सो शुभ नहिं लेवै ।
जामें जीवनिको उपकारी सो देवौ सबकों हितकारी ॥२३ ॥
अन्नवस्त्र जल औषध आदि देवौ श्रुतमें कह्यौ अनादि ।
दान समान न आजु कोई दयादान सबके सिर होई ॥२४॥

मंजारादिक दुष्ट सुभावा, मास अहारी मलिन कुभावा ।
तिनको धारन कबहू न करनो, जीवनिकी हिंसातैं डरनो ॥२५॥
नखिया पखिया हिंसक जेही, धर्मवत पालै नहि तेही ।
आयुधिको व्यापार न कोई, जाकरि जीवनको बध होई ॥२६॥
सीसा लोह लाख साबुन ए, बनिजजाग नहिं अघकारन ए,
जती बस्तु सदोष बताई, तिनको बनिज त्यागै भाई ॥२७॥
धान पान मिष्टादि रसादिक, लवण हींग घृत तेल इत्यादिक ।
दल फल तृण पहुपादिक कंदा, मधु मादिक बिणिजै मतिमंदा ॥
अतर फुलेल सुगन्ध समस्ता, इनको बणिज न हो प्रशस्ता ।
तथा आयोग्य मोम हरतारें हिंसाकारन व्यम टारै ॥२९॥
बध बधनके कारिज जेते, त्यागहु पाप बिणज तुम तेते ।
पशु पखी नर नारी भाई, इनको विणज महा दुखदाई ॥३०॥
काष्टादिकको विणज न करै, धर्म अहिंसा उरमें धरै ।
ए सब कुबिणज छाडै जोई, धरम सरावक धारै सोई ॥३१॥
मूलगुणनिमे निंदे एई, अष्टम व्रतमें निंदे तेई ।
बार बार यह विणज जु निंद्या, इनकूं त्यागै ते नर बंद्या ॥३२॥
सुवरण रूपा रतन प्रसस्ता, रूई कपरा आदि सुवस्ता ।
विणज करै तौ ए करि मित्रा, सब तजनै अति ही अपवित्रा ॥
सुनो पाचमो और अनर्था, जे शठ सुनहिं मिथ्यामत अर्था ।
एह कुसुत्र सुणवौ अघ मोटा, और पाप सब यातें छोटा ॥३४॥
पाप सकल उपजे या सेती, उपजै कुबुधि जागतमे तेती ।
भडिम बात सुनो मति भाई, वसीकरण आदिक दुखदाई ॥
वसीकरण मनको करि संता, मन जीत्या है ज्ञान अनंता ॥

कामकथा सुनिवौ नहिं कबहू, भूले घर्नें चेत परि अबहू ।।३६।।
परनिंदा सुनियां अति पापा, निंदक लहै नरक संतापा ।
कबहुं न करिवौ राग अलापा, दोष त्यागिवौ होय निपापा ।।३७।।
विकथा करिवो जोगि न वीरा, धर्मकथा सुनिवौ शुभ धीरा ।
आलवाल बकिवौ नहिं जोग्या, गालि काढ़िवौ महा अजोग्या ३८
विनाजैनबानी सुखदानी, और चित्त धरिवौ नहिं प्रानी ।
केवलिश्रुत केवलिकी आणा, ताको लागै परम सुजाणा ।।३९।।
ते पावें निर्वाण मुनीशा, अजरामर होवें जोगीशा ।
सीख श्रवण रचना कुकथाको, नहीं करो जु कदापि वृथाको ।४०
जीवदयामय जिनवरपंथा, धारै श्रावक अर निरग्रन्था ।
काम क्रोध मद छल लोभादी, टारै जैनी जन रागादी ।। ४१।।
आगम अध्यातम जिनवानी, जाहि निरूपें केवल ज्ञानी ।
ताकी श्रद्धा दिढ़ धरि धीरा, करणगोचरी कर वर वीरा ।।४२।।
जाकरि छूटै सर्व अनर्था, लहिये केवल आतम अर्था ।
धर्म धारणा धारि अखण्डा, तजौ सर्व ही अनरथदंडा ।।४३।।
इन पंचनिके भेद अनेका, त्यागौ सुबुधी धारि विवेका ।
बड़ो अनर्थ दण्ड है दूजो, यातें सर्व पाप नहिं दूजो ।।४४।।
या सम और न अनरथ कोई, सकल वरतको नाशक होई ।
दूत कमके विसन न लागे, सब सब पाप पन्थतें भागे ।। ४५ ।।
दूतकर्ममें नाहिं बड़ाई, जाकरि बूडै भवमें भाई ।
अनरथ तजिवौ अष्टम व्रता, तीजो गुणव्रत पापनिवृत्ता ।।४६।।
ताके अतीचार तजि पंचा, तिन तजियां अघ रहै न रञ्चा ।
पहलो अतीचार कंदर्पा, ताको भेद सुनों तजि दर्पा ।। ४७ ।।

कामोद्दीपक कुकथा जोई, ताहि तजै बुधजन है सोई।
कौतकुच्य है दोष द्वितीया, ताको त्याग व्रतनिनें कीया ॥४८॥
बदन मोरिवौ बाकी करिवौ, भौंह नचैवौ मच्छर धरिवौ।
नयनादिकको जो हि चलावौ, विषयादिकमें मन भटकावौ ॥४९॥
इत्यादिकजे भंडिम बातें, तजौ व्रती जे सुव्रत घातें।
कौतकुच्यको अर्थ बखानो, फुनि सुनि तीजा दोष प्रवानों ॥५०॥
भोगानर्थक है अति पापा, जाकरि पइये दुर्गति तापा।
ताकों सदा सर्वदा त्यागौ, श्री जिनवरके मारग लागौ ॥ ५१ ॥
बहुत मोल्दे भोगुपभोगा, सेवै सो पावै दुख रोगा।
भोगुपभोगथकी यह प्रीति, सो जानों अधिकी विपरीती ॥५२॥
बहुरि भूखतें अधिको भोजन, जल पीवौ जो विनहि प्रयोजन।
शक्ति नहीं अरु नारी सेवौ, करि उपाय मैथुन उपजेवौ ॥५३॥
वृथा फूल फल पानादिक जे, बाधा करै लहै शठ अघ जे।
इत्यादिक जे भोगै अर्था, जो सेवौ सो लहै अनर्था ॥५४॥
है मौखर्य चतुर्था दोषा, ताहि तजै श्रावक व्रतपोषा।
जो वाचालपनाको भावा, सो मौखर्य कहैं मुनिरावा ॥५५॥
बिना विचार्यौ अधिको बकिवौ, झूठे वाकजालमें छकिवौ।
असमीक्षित अधिकर्ण जु बोरा, अतीचार पंचम तजि धीरा ॥५६॥
बिन देख्यो विन पूछ्यौ कोई, घट्टी मूसल उखली जोई।
कछु भी उपकरणा बिन देख्या, बिन पूंछया गृहिवौ न असेखा॥५७॥
तब हिंसा टरिहै परवीना, हिंसातुल्य अनर्थ न लीना।
ए सब अष्टम व्रतके दोषा, करै जु पापी व्रतकों सोखा॥ ५८ ॥
इन तजिसी व्रत निर्मल होई, तातें तजै धन्य है सोई।

गुणव्रत काहेतें जु कहाये, ताको अर्थ सुनों मनलाये ॥ ५९ ॥
पंच अणुव्रतकों गुणकारी, तातें गुणव्रत नाम जु धारी।
जैसें नगरनें ह्वै कोटा, तैसें व्रत रक्षक ए मोटा ॥६०॥
क्षेत्रनि होय बाड़ि जो जैसें, पंचनिके ए तीनूं तैसें।
अब सुनि चउ शिक्षाव्रत मित्रा, जिन करि होवें अष्ट पवित्रा ॥
अष्टनिकों संख्या दायक ए, ज्ञानमूल तप व्रत नायक ए।
नवमो व्रत पहिलो शिक्षाव्रत, चित्त धीर धर बारहु अणुव्रत ॥६२॥
सामायक है नाम जु ताको, धारन करत सुधीजन याकों।
सामायक शिवदायक होई, या सम नाहिं क्रिया निधि कोई ॥६३॥

दोहा—प्रथम हि सातों शुद्धता, भासो श्रुत अनुसार।
जिन करि सामायक विमल,—होय महा अविकार ॥ ६४ ॥
क्षेत्र काल आसन विनय, मन बच काय गनेहु।
सामायककी शुद्धता, सात चित्त धरि लेहु ॥ ६५ ॥
जहा शब्द कलकल नहीं, बहुजनको न मिलाप।
दंसादिक प्राणी नहीं, ता क्षेत्रे करि जाप ॥ ६६ ॥
क्षेत्र शुद्धता इह कही, अब सुनि काल विशुद्धि।
प्रात दुपहरा साझको, करै सदा सद्बुद्धि ॥ ६७ ॥
षट षट घटिका जो करै, सो उतकिष्टी रीति।
चउ चउ घटिका मध्य है, करै शुद्धि धरि प्रीति ॥ ६८ ॥
द्वै द्वै घटिका जघनि है, जेतो थिरता होइ।
तेतो बेला योग्य है, या सम और न कोइ ॥ ६९ ॥
धरै सुधी एकाग्रता, मन लावै जिनमाहिं।
यहै शुद्धता कालकी समै उलंघै नाहिं ॥ ७० ॥

तीजी आसन शुद्धता, ताको सुनहु विचार।
पल्यंकासन धारिकै, ध्यावै त्रिभुवन सार ॥ ७१ ॥
अथवा काऊसर्ग करि, सामायक करतव्य।
तजि इन्द्रियव्यापार सहु, ह्वै निश्चल जन भव्य ॥ ७२ ॥
विनै शुद्धता है भया, चौथी जिनश्रुति माहिं।
जिनवचमें एकामता, और विकल्पा नाहिं ॥ ७३ ॥
हाथ जोडि आधीन ह्वै, शिर नवाय दे ढोक।
तन मन करि दासा भयौ, सुमरै प्रभु तजि शोक ॥ ७४ ॥
विनय समान न धर्म कोउ, सामायकको मूल।
अब सुन मनकी शुद्धता, ह्वै व्रतसो अनुकूल ॥ ७५ ॥
मन लावै जिनरूपसो, अथवा जिन पद माहिं।
सो मन शुद्धि जु पञ्चमो, यामें संसै नाहिं ॥ ७६ ॥
छट्ठी वचन विशुद्धता, बिन सामायक और।
वचन कदापि न बोलिये, यह भाषें जगमौर ॥ ७७ ॥
काय शुद्धता सातमी, ताको सुनहु विचार।
काय कुचेष्टा नहिं करै, हस्तपदादिक सार ॥ ७८ ॥
क्षेत्र प्रमाण कियो जिनैं, तजे पापके जोग।
मुनि सम निश्चल होयके, करै जाप भविलोग ॥ ७९ ॥
राग दोषके त्यागतें, समता सब परि होइ।
ममताको परिहार जो, सामायक है सोइ ॥ ८० ॥
सामायक अहनिसि करें, ते पावे भवपार।
सामायक सम दूसरो, और न जगमे सार ॥ ८१ ॥
रात्रि दिवस करनो उचित, बहु थिरता नहिं होय।

तौहु त्रिकाल न टारिवौ, यह धारै बुध सोय ॥ ८२ ॥
जो समायकके समय, थिरता गहै सुआन ।
अणुव्रत धारै सो सुधी, तौपनि साधु समान ॥ ८३ ॥

छन्द चाल

सामायक सो नहिं मित्रा, दूजो व्रत कोई पवित्रा ।
गृहपतिकों जतिपति तुल्या, करई इह व्रत जु अतुल्या ॥८४॥
तसु अतीचार तजि पंचा, जब होइ सामायक संचा ।
मन वच तन दुःप्रणिधाना, तिनको सुनि भेद बखाना ॥८५॥
जो पाप काज चिंतवना, सो मनको दूषण गिनना ।
फुनि पाप वचनको कहिवौ, सो वचन व्यतिक्रम लहिवौ ॥८६
सामायक समये भाई, जो कर चरणादि चलाई ।
सो तनको दोष बतायो, सतगुरुने ज्ञान दिखायो ॥८७॥
चौथो जु अनादर नामा, है अतीचार अघधामा ।
आदर नहिं सामायकको, निश्चै नहिं जिननायकको ॥८८॥
समरण अनुपस्थाना है, इह पंचम दोष गिना है ।
ताको सुनि अर्थ विचारा, समरणमे भूलि प्रचारा ॥८९॥
नहिं पूरो पाठ पडै जो, परिपूरण नाहिं जपै जो ।
कछुको कछु बोलैं बाल, सो सामायक नहिं काल ॥९०॥
ए पञ्च अतीचारा है, सामायकमें टारा हैं ।
समता सब जीवन सेती, संजम सुभ भावन लेती ॥९१॥
आरति अरू रौद्र जु त्यागा, सो सामायक बड़भागा ।
सामायक धारौ भाई, जाकरि भवपार लहाई ॥९२॥

बेसरी छंद।

क्षमा करौ हमको सब जीवा, सबसौं हमरी क्षमा सदीवा।
सर्व भूत है मित्र हमारे, बैरभाव सबहीसों टारे॥ ९३॥
सदा अकेलो मैं अविनाशी, ज्ञान-सुदर्शनरूप प्रकाशी।
और सकल जो हैं परभावा, ते सब मोतें भिन्न लखावा॥९४॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अखंडा, गुण अनन्तरूपी परचंडा।
कर्मबन्धतें रुले अनादी, भटको भववन माहिं जुवादी॥ ९५॥
अब देखौ अपनों निजरूपा, तब होवो निर्वाणसरूपा।
या संसार असार मंझारे, एक न सुखकी ठौर करारे॥ ९६॥
यहै भावना नित्त भावंतो, लहैं आपनो भाव अनंतो।
अब सुनि पोसहकी विधि भाई, जो दसमोव्रत है सुखदाई।९७।
दूजा शिक्षाव्रत अति उत्तम, याहि धरें तेई जु नरोत्तम।
न्हावन लेपन भूषन नारी—सगति गंध धूप नहिं कारी॥९८॥
दीपादिक उद्योत न होई, जानहु पोसहकी विधि सोई।
एक मासमे चउ उपवासा, द्वै अष्टमि द्वै चउदसि मासा॥९९॥
षोडष पहर धारनो पोसा, विधिपूर्वक निर्मल निर्दोसा।
सामायककी सो जु अवस्था, षोडश पहर धारनी स्वस्था।१००
पोसह करि निश्चल सामायक, होवे यह भासे जगनायक।
पोसक सामायकको जोई, पोसह नाम कहावै सोई॥ १॥
जे सठ चउ उपवास न धारें, ते पशुतुल्य मनुषभव हारें।
बहुत करै तो बहुत भला है, पोसा तुल्य न और कला है॥ २॥
चउ टारै चउगतिके माहीं, भरमें यामें संसय नाहीं।
द्वै उपवासा पखवारेमें, इह आज्ञा जिनमत भारेमें॥ ३॥

व्रतकी रीति सुनों मनलाये, जाकरि चेतन तत्त्व लखाये ।
सप्तमि तेरसि धारन धारे, करि जिनपूजा पातिग टारे ॥ ४ ॥
एकभुक्त करि दो पहरांतें, तजि आरम्भ रहै एकांतें ।
नहिं ममता देहादिक सेती, धरि समता बहु गुणहि समेती ॥५॥
चउ आहार चउ विकथा टारै, चउ कषाय तजि समता धारै ।
धरमी ध्यानारूढ़मती सो जगत उदास शुद्धवरती सो ॥ ६ ॥
स्त्री पशु पंढ बालकी संगति, तजि करि उरमें धारै सनमति ।
जिनमन्दिर अथवा बन उपवन, तथा मसानभूमिमें इक तन ।७।
अथवा और ठौर एकान्ता, भजै एक चिद्रूप महंता ।
सर्व पाप जोगनिते न्यारा, सर्व भोग तजि पोसह धारा ॥ ८॥
मन वच काय गुप्ति धरि ज्ञानी, परमातम सुमरे निरमानी ।
या विधि धारण दिन करि पूरा, संध्या करै सांझकी सूरा ॥६॥
सुचि संथारे रात्रि गुमावे, निद्राको लवलेश न आवे ।
कै अपनो निजरूप चितारै, कै जिनवर चरणा चित धारै ।१०
कै जिनबिम्ब निरखई मनमें, भूल न ममता धरई तनमें ।
अथवा ओंकार अपारा, जपै निरंतर धीरज धारा ॥ ११ ॥
नमोकार ध्यावै वर मित्रा, भयो भर्मतें रहित स्वतंत्रा ।
जगविरक्त जिनमत आसक्तो,सकल मित्र जिनपति अनुरक्तो १२
कर्म शुभाशुभको जु विपाका, ताहि विचारै नाथ क्षमाका ।
निजकों जानै सबतें भिन्ना, गुण-गुणिकों मानै जुअभिन्ना१३
इम चितवनतें परम सुखी जो, भववासिन सो नाहिं दुखी जो ।
पंच परमपदको अति दासा, इन्द्रादिक पदतें हु उदासा ॥१४ ॥
रात्रि धारनाकी या विधिसों, पूरी करै भरयो व्रतनिधिसों ।

फुनि प्रभात संध्या करि वीरा, दिन उपवास ध्यानधरि धीरा१५
पूरो करै धर्मसों जोई सध्या करै साझको सोई ।
निशि उपवासतणी व्रतधारी, पूरी करै ध्यानसों सारी ॥१६॥
करि प्रभात सामायक शुबुधो, जाके घटमें रंच न कुबुधी ।
पारण दिवस करै जिनपूजा, प्रासुक द्रव्य और नहिं दूजा ।१७।
अष्ट द्रव्य ले प्रासुक भाई श्री जिनवरकी पूज रचाई ।
पात्रदान करि दो पहरा जे, करै पारणू आप घरांजे ॥ १८ ॥
ता दिन हू यह रीति बताई, ठौर आहार अल्प जल पाई ।
धारन पारन अर उपवासा, तीन दिवसलो वरत निवासा ॥१६।
भूमिशयन शीलव्रत धारै, मन वच तन करि तजै विकारै ।
इहउतकृष्टी पोसह विधि है, या पोसह सम और न निधि है २०
मध्य जु पोसह बारह पहरा, जघनि आठ पहरा गुण गहरा ।
अतीचार याके तजि पंचा, जाकरि छूटै सर्व प्रपंचा ॥ २१ ॥
बिन देखी बिन पूंछे वस्तू, ताको गृहिवौ नाहिं प्रशस्तु ।
गृहिवौ अतीचार पहलो है, ताको त्यागसु अतिहि भलो है ।२२।
बिन देखे विन पूंछे भाई, सथारे नहिं शयन कराई ।
अतीचार छूटै तब दूजो, इह आज्ञा धरि जिनवर पूजो ॥ २३ ।
बिन देखो बिन पूंछो जागा, मल मूत्रादि न कर वड़भागा ।
करिबो अतीचार है तीजौ, सर्व पाप तजि पोसह लीजो ॥२४॥
पर्व दिनाको भूलन चौथो, अतीचार यह गुणतें चौथो ।
बहुरि अनादर पंचम दोषा पोसहको नहिं आदर पोषा ॥ २५॥
ये पाचो तजिया ह्वै पोषा, निरमल निश्चल अति निरदोषा ।
सामायक पोषह जयवंता, जिनकर पइये श्रीभगवंता॥२६॥

मुनि होनेको एहि अभ्यासा, इन सम और न कोइ अभ्यासा।
भुक्ति मुक्ति दायक ये व्रत्ता, धन्य धन्य जे करहिं प्रवृत्ता ॥२७॥
अब सुनि व्रत ग्यारमो मित्रा, तीजो शिक्षाव्रत्त पवित्रा।
जे भोगोपभोग हैं जगके ते सहु बटमारे जिनमगके ॥ २८ ।
त्याग जाग हैं सकल विनासी, जो शठ इनको होय विलासी।
सो रुलिहै भवसागर माहीं, यामे कछू संदेहा नाहीं ॥ २९ ॥
एक अनंतो नित्य निजातम, रहित भोग उपभोग महातम।
भोजन तांबुलादिक भोगा, वनिता वस्त्र आदि उपभोगा ॥ ३० ॥
एकबार भोगनमें आवे, ते सहु भोगा नाम कहावे।
बार बार जे भोगो जाई, ते उपभोगा जानहु भाई ॥३१ ॥
भोगुपभोग तनों यह अर्था, इन सम और न कोइ अनर्था।
भोगुपभोग तनों परमाणा, सोतीजो शिक्षाव्रत जाणा ॥ ३२॥
छता भोग त्यागे बडभागा, तिनके इन्द्रादिक पद लागा।
अछताहून तजें जे मूढा, ते नहिं होय व्रत्त आरूढा ॥ ३३ ॥
करि प्रमाण आजन्म इनूंका, बहुरि नित्य नियमादि तिनूंका।
गृहपतिके थावरकी हिंसा, इन करि ह्वै फुनि तज्या अहिंसा ३४
त्याग बराबर धर्म न कोई, हिंसाको नाशक यह होई।
अंग विषें नहिं जिनके रङ्गा, तिनके केसे होय अनङ्गा ॥३५ ॥
मुख्य बारता त्याग जु भाई, त्याग समान न और बडाई।
त्याग बनै नहिं तौहु प्रमाणा, तामें इह आज्ञा परवाणा ॥३६ ॥
भोग अजुक्त न करनों कोई, तजनों मन बच तन करि सोई।
जुक्त भोगको करि परमाणा ताहूमें नित नेम बखाणा ॥ ३७॥
नियम करौ जु घरीहि घरीको, त्याग करौ सबही जु हरीको।

जे अनंतकाया दुखदाया, ते साधारण त्याग कराया ॥ ३८ ॥
पत्र जाति अर कंद समूला, तजने फूलजाति अघ थूला ।
तजनें मद्य मास नवनीता, सहत त्यागिवौ कहैं अजीता ॥३९॥
तजने कांजी आदि सबैही, अत्थाणा सधाण तजेही ।
तजनें परदारारिक पापा, तजिवौ परधन पर संतापा ॥ ४० ॥
इत्यादिक जे वस्तु विरुद्धा, तिनकों त्यागै सो प्रतिबुद्धा ।
सबही तजिवौ महा अशुद्धा, अर जे भोगा हैं अविरुद्धा । ।४१।
भोग भावमें नाहिं भलाई, भोग त्यागि हूजै शिवराई ।
अपने गुण पर-जाय स्वरूपा, तिनामें राचै हित विरूपा ॥४२॥
वस्त्राभरण ब्याहता नारी, खान पान निरदूषण कारी ।
इत्यादिकजे अविरुध भोगा, तिनहूको जानै ए रोगा ॥ ४३ ॥
जों न सर्वथा तजिया जाई, तौ परमाण करौ वहु भाई ।
सर्व त्यागवौ कहैं विवेकी गृहपतिके कछु इक अविवेकी ॥ ४४।
तौ लगि भोगुपभोगहि अल्पा, विधिरूपा धारै अविकल्पा।
मुनिके खान पान इकबारा, सोहू दोष छियालिस टारा ॥ ४५ ।
और न एको है जु विकारा, तातै महाव्रती अणगारा ।
तजै भोगउपभोग सबैही, मुनिवरका शुभ विरद फबैही ॥४६॥
शक्ति प्रमाण गृही हू त्यागै, त्याग बिना व्रतमें नहिं लागै ।
राति दिवसक नेम विचारै, यम-नियमादि धरै अघ टारै ॥४७॥
यम कहिये आजन्म जु त्यागा, नियम नाम मरजादा लागा ।
यम नियमादि बिना नर देही, पसुहूतें मूरख गनि एही ॥ ४८॥
खान पान दिनहीको करनों, रात्रि चतुर्विधआहार हि तजनों ।
नारी सेवे रैनि विषें ही, दिनमें मैथुन नाहिं फबैही ॥ ४९ ॥

निसि ही नितप्रति करनों नाहीं, त्याग विराग विवेक धराहीं ।
नियम माहिं करनों नितनेमा सीम माहिं सीमाको प्रेमा ॥ ५०॥
करि प्रमाण भोगनिको भाई, इन्द्रिनको नहिं प्रबल कराई ।
जैसे फणिकूं दूध जु प्यावौ, गुणकारी नहिं विष उपजावो ।५१।
जो तजि भोग भाव अधिकाई, अल्पभोग संतोष धराई ।
सो बहुती हिंसातें छूट्यौ, मोहवतें नहिं जाय जु लूट्यौ ॥५२॥
दया भाव उपजो घट ताके, भोगभावकी प्रीति न आके ।
भोगुपभोग पापके मूला, इनकूं सेवैं ते भ्रम भूला ॥ ५३ ॥

दोहा—हिंसाके कारण कहे, सर्व भोग उपभोग ।
इनको त्याग करै सुधी, दयावंत भवि लोग ॥५४ ॥
सो श्रावक मुनि सारिखे, भोग अरुचि परणाम ।
समता धरि सब जीव परि, जिनके क्रोध न काम ॥ ५५ ॥
भोगुपभोग प्रमाण सम, नहीं दूसरो और ।
तृष्णाको क्षयकार जो, है व्रतनि सिरमौर ॥ ५६ ॥
अतीचार या व्रतको, तजो पञ्च दुखदाय ।
तिन तजियां व्रत विमल ह्वे लहिये श्री जिनराय ॥ ५७ ॥
नियम कियौ जु सचित्तको, भूलिर करैं अहार ।
सो पहलो दूषण भयो तजि दूजे अविकार ॥ ५८ ॥
प्रासुक वस्तु सचित्तसों, मिश्रित कबहूं होय ।
उष्ण जल जु सीतल उदक मिल्यो न लेवौ कोय ॥५९॥
यहै दोष दूजो लगे, अब सुनि तीजो दोष ।
जो सचित्तसंबंध है, तजौ पापको पोष ॥ ६० ॥
पातल दूनां आदि जे, वस्तु सचित्त अनेक ।

तिनसों ढक्यौ अहार जो, जीमें सो अविवेक ।। ६१ ।।
सुनि चौथो दूषण सुधी, नाम जु अभिषव जास ।
याको अर्थ अजोगि , जैन भखै जिनदास ।। ६२ ।।
अथवा काम उद्दापका, भोजन अति हि अजोगि ।
ते कबहुं करनें नहीं, बरजैा देव अरोगि ।। ६३ ।।
बहुरि तजौ बुध पंचमो, अतीचार अघरूप ।
दु:पक्को आहार जो अव्रतको जु स्वरूप ।। ६४ ।।
अति दुर्जर आहार जो वस्तु गरिष्ट सु होय ।
नहीं जोगि जिनवर कहै, तजें धन्नि हैं सोय ।। ६५ ।।
कछु पक्यो कछु अपक ही, दुखसों पचै जु कोय ।
सो नहिं लेवो व्रतानिको, यह जिन आज्ञा होय ।६६ ।।
अतीचार पाचो तज्या, व्रत निर्मल ह्वै वीर ।
निर्मल व्रतप्रभावतैं, लहै ज्ञान गंभीर ।। ६७ ।।

छन्द चाल

धरि वरत वारमो मित्रा, जो अतिथिविभाग पवित्रा ।
इह चौथो शिक्षाव्रत्ता, जे याकों करें प्रवृत्ता ।।६८ ।।
ते पावें सुर शिव भूती, वा भोगभूमी परसूती ।
सुनि या व्रतकी विधि भाई, जा विधि जिनसूत्र बताई ।। ६८ ।।
त्रिविधा हि सुपात्रा जगमे, जगको नौका जिनमगमें ।
महाव्रत अणुव्रत समदृष्टी, जिनके घट अमृतवृष्टी ।। ८७ ।।
तिनको बहुधा भक्तीतै, श्रद्धादि गुणनि जुक्ती तैं ।
देवो चउदान सदा जो सो है व्रत द्वादशमो जो ।। ५० ।।
चउदान सबोंमे सारा, इनसे नहिं दान अपारा ।

भोजन औषध अरु नाना, फुनि दान अभै परवाना ॥ ७१ ॥
भोजन दानहिं धन पावै, औषधि करि रोग न आवै ।
श्रुतिदान बोध जु लहाई, इह आज्ञा श्रीजिनगाई ॥ ७२ ॥
अभया है अभय प्रदाता, भाषै प्रभु केवल ज्ञाता ।
इक भोजनदानें माहीं, चउ दान सधें शक नाहीं ॥ ७३ ॥
नहिं भूख समान न व्याधी, भव माहीं बड़ी उपाधी ।
तातें भोजनसो अन्या, नहिं दूजी औषध धन्या ॥ ७४ ॥
फुनि भोजनबल करि साधू, करई जिनसूत्र अराधू ।
भोजनतें प्राण अधारा, भोजनतें थिरता धारा ।७५ ।
तातें चउ दान सधैहैं दानें करि पुण्य बंधे हैं ।
सो सहु बांछा तजि ज्ञानी, होवौ दानी गुणखानी ।७६ ।
इह भव पर भवको भोगा, चाहैं नहिं जानहिं रोगा ।
दे भक्ति करि सुपात्रनकों, निजरूप ज्ञानमात्रनिकों । ७७ ।
तिह रतनत्रयमे संघो, थाप्यौ चउविधिको संघो ।
सो पावै भुक्ति बिमुक्ती, इह केवलि भाषित उक्ती ।७८
नहिं दान समान जु कोई, सब व्रतको मूल जु होई ।
यासें भविजन चित धारो, संसारपार जो चाहो । ७९ ।
जो भाषे त्रिबिधा पात्रा, तिनिमे मुनि उत्तम पात्रा ।
हैं मध्यम पात्रअणुव्रती, समदृष्टी जघन्य अव्रती । ८०
इन तीननिके नव भेदा, भाषें गुरु पाप उछेदा ।
उत्तममें तीन प्रकारा, उत्किष्ट मध्य लघु धारा ।८१ ।
उत्तम तीर्थंकर साधू, मध्य सु गणधर आराधू ।
तिनतें लघु मुनिवर सर्वे, जे तप व्रतसूं नहिं गर्वे ॥ ८२ ॥

ए त्रिविध उत्तमा पात्रा, तप संजम शील सुमात्रा।
तिनकी करिभक्ति सु बीरा, उतरै जा करि भवनीरा ॥८३॥
मुनिवर होवै निरगन्था, चालै जिनवरके पंथा।
जो विरकत भव भोगनितें, राग न दोष न लोगनितें। ८४।
विश्राम आपमें पायौ, काहूमें चित्त न लायौ।
रहनों नहिं एकै ठौरा, करनों नहिं कारिज औरा। ८५।
धरनूं निज-आतम-ध्यान, हरनूं रागादि अज्ञान।
नहिं मुनिसे जगमें कोई, उतरें भवसागर साई। ८६।

दोहा—मोह कर्मकी प्रकृति सहु, होय जु अट्ठाईस।
तिनमे पन्द्रह उपसमे, तब होवै जोगीस। ८७।
पन्द्रा रोकें मुनिव्रतें, ग्यारा अणुव्रत रोध।
सात जु रोकें पापिनी, सम्यक दरशन बोध।८८।
क्रोध मान छल लोभ ए, जीवोंकों दुखदाय।
सो चंडाल जु चाकरी, वरजें श्रीजिनराय ॥ ८९ ॥
अनंतानुबन्धी प्रथम, द्वितीय अप्रत्याख्यान।
प्रत्याख्यान जु तीसरी, अर चौथी संजुलान ॥ ९० ॥
तिनमे तीन जु चौकरी अर तीव्र मिथ्यात।
एपंदरा प्रकृतिया, तजि व्रत होइ विख्यात ॥ ९१ ॥
पहली दूजी चौकरी, बहुरि मिथ्यात जु तीन।
ए ग्यारा प्रकृती गया, श्रावकव्रत लवलीन॥ ९२ ॥
प्रथम चौकरी दूजी है, टरैं तीन मिथ्यात।
ए सातों प्रकृती टरया, उपजे सम्यक भ्रात। ९३।
तीन चौकरी मुनिव्रतें, द्वै अणुव्रत विधान।

पहली रोकें सम्यक्त, चौथी केवलज्ञान । ९४ ।
तीन मिथ्यात हतें महा, मुनिव्रत अरु अणुव्रत ।
अव्रत सम्यककू हनें, करहिं अधर्म प्रवृत्त । ९५ ।
प्रथम मिथ्यात अबोध अति, जहां न निज-परबोध ।
धर्म अधर्म विचार नहिं, तीव्रलोभ अरु क्रोध । ९६ ।
दूजी मिश्र मिथ्यात है, कछु इक बोध प्रबोध ।
तीजी सम्यक प्रकृति जो, वेदक सम्यक बोध । ९७ ।
कछु चाचल कछु मलिन जो, सर्वघाति नहिं होइ ।
तीन माहिं इह शुभ तहूं,—वरजनीक है सोइ । ९८ ।
ए मिथ्यात जु तीन विधि, कहे सूत्र अनुसार ।
सुनों चौकरी बात अब, चारि चारि परकार । ९९ ।
क्रोध जु पाहन रेख सो, पाहन थंभ जु मान ।
माया बास जु जड़ समा, अति परपंच बखान ॥ १०० ।
लोभ जु लाखा रंग सो, नर्कजोनि दातार ।
भरमावै जु अनंत भव, प्रथम चौकरी भार । १ ।
हलरेखा सम क्रोध है, अस्थि थंभसम मान ।
माया मींढ़ा सींगसी, तिथि षट मास प्रमान । २ ।
रङ्ग आलके सारखो, लोभ पशुगति दाय ।
इह दूजो है चौकरी, अप्रत्याख्यान कहाय ॥३॥
रथरेखा सम क्रोध है, काठथम्भ सो मान ।
गोमूत्रकी जु वक्रता, ता सम माया जान ॥४॥
लोभ कसूमारङ्ग सो, नर भवदायक होई ।
दिन पंद्रा लग वासना, तृतीय चौकरी सोई ॥५॥

जलरेखा सो रोस है, बेंतलता सो मान।
माया सुरभी चमरशो, लोभ पतंग समान ॥६॥
तथा हरिद्रारंग सो, सुरगति दायक जेह।
एक महूरत बासना, अन्त चौकरी लेह ॥७॥
कही चौकरी चारि ये, च्यार हि गतिकों मूल।
चारि चौकरौ परि हरै, करै करम निरमूल ॥८॥
मुनिनें तीन जु परिहरीं, धरी सातता सार।
चौथी हूको नाश करि, पावै भवजल पार ॥९॥
सकल कर्मकी प्रकृति सौ, अरि ऊपरि अड़ताल।
मुनिवर सर्व खपावहीं, जीवनिके रिछपाल ॥१०॥
मुनिपद बिन नहिं मोक्ष पद, यह निश्चै उरधारि।
मुनिराजनकी भक्ति करि, अपनो जन्म सुधारि ॥११॥

छन्द चाल।

मुनि हैं निभय वनवासी, एकान्तवास सुखरासी।
निज ध्यानी आतमरामा, जगकी संगति नहीं कामा ॥१२॥
जे मुनि रहनेको थाना, बनमें कराहिं मतिवाना।
ते पावं शिव सुर थाना, यह सूत्रप्रमाण बखाना ॥१३॥
मुनि लेई अहारइ मित्रा, लघु एक बार कर पात्रा।
जे मुनिको भोजन देहीं, ते सुरपुर शिवपुर लेहीं ॥१४॥
जौ लग नहिं केवल भावा, तौ लग आहार धरावा।
केवल उपजें न अहारा, भागें भवदूषण सारा ॥१५॥
नहिं भूख तृषादि सबै ही, जब केवल ज्ञान फबैही।
केवल पायें जिनराजा, केवल पद ले मुनिराजा ॥१६॥

मुनिकी सेवा सुखकारी, बड़ भाग करें उरधारी ।
पुस्तक मुनि पै ले जावें, मुनि सूत्र अर्थ ते आवें ॥१७॥
ते पावें आतमज्ञाना, ज्ञानहिं करि ह्वै निरवाना ।
भेषज भोजनमे युक्ता, मुनिकों लखि राग प्रव्यक्ता ॥१८॥
देवें ते रोग नसावें, कर्मादिक फेरि न आवें ।
मुनि श्रै उपसर्ग निवारें, ते आतम भवदधि तारें ॥१९॥
मुनिराज समान न दूजा, मुनिपद त्रिभुवन करि पूजा ।
मुनिराज त्रिवर्णा होवै, शद्र नहिं मुनिपद जोवे ॥२०॥
मुनि आर्या एल महा ए ह्वै, क्षत्री द्विज बणिजाए ।
अब मध्यपात्रके भेदा, त्रिविधा मुनि पाप उछेदा ॥२१॥
उतकिष्ट रु मध्य जघन्या, जिनसे नहिं जगमे अन्या ।
पहली पडिमासो लेई, छठ्ठी तक श्रावक जेई ॥२२॥
मध्यनिमे जघन कहावै, गुरु धर्म देव उर लावै ।
जे पञ्चम ठाणों भाई, अणुव्रत्ती नाम धराई ॥२३॥
पहली पडिमा धर बुद्धा, सम्यक दरसन गुण शुद्धा ।
त्यागें जे सातों बिसना, छाडें विषयनकी तृष्णा ॥२४॥
जे अष्टमूल गुण धारे, तजि अभख जीव न सधारें ।
दूजी पड़िमा धर धारा, व्रतधारक कहिये वीरा ॥२५॥
बारा व्रत पालै जोई, सेवे जिनमारग सोई ।
जे धारें पञ्च अणुव्रत्त, त्रय गुणव्रत चउ शिक्षाव्रत ॥२६॥
चौपाई—ताजी पडिमा धरि मतिवन्त, सामायकमे मुनिसे सन्त ।
पोसामे आरूढ़ विशाल, सो चौथी पडिमा प्रतिपाल ।२७॥
पञ्चम पडिमा धर नर धीर, त्याग सचित्त वस्तु वर वीर ।

पत्र फूल फल कूंपल आदि, छालि मूल अंकुर बीजादि ॥२८॥
मन बच तन करि नीली हरो, त्यागै उरमे दृढ व्रतधरी।
जीव दयाको रूप निदान, पट कायाको पीहर जान ॥२६॥
पाल्यौ जैन वचन जिन धीर, मर्व जीवकी मेटी पोर।
छट्ठी प्रतिमा धारक सोई, दिवस नारिको परम न होई ॥३०।
रात्रि विषे अनसन व्रत धरै, चउ अहारको है परि हरै।
गमनागमन तजै निशि माहिं मनबचतन दिन शील धराहिं॥
ए पहलीलो छट्ठी लगे, जघन्नि श्रावकके व्रत जगें।
पतिव्रता व्रतवती नारि, मध्यम पात्र जघन्नि विचारि ॥३२॥
श्रावक और श्राविका जेह घरवारी व्रतचारी तेह।
मध्यम पात्तर कहे जघन्य, इनकी सेव करे सो धन्य ॥३३॥
वस्त्राभरण अन्न जल आदि, थान मान औषध दानादि।
देवे श्रुत सिद्धांत जु बीर, हरनी तिनकी सब ही पीर ॥३४॥
अभय दान देवो गुणवान, करनी भगति कहैं भगवान।
भवजलके द्रोहण ए पात्र, पार उतारें दरसन मात्र ॥३५।

दोहा—सप्तम प्रतिमा धारका ब्रह्मचर्य व्रत धार।
नारीको नागिनि गिने, लख्यौ तत्व अविकार ॥३६॥
मन वच तन करि शीलधर, कृत कारित अनुमोद।
निजनारीहूकूं तजे, पावै परम प्रमोद ॥ ३७ ॥
जैसे ग्यारम दशम नव, अष्टम पड़िमाधार।
मन बच तन करि शील धरि, तैसे ए अविकार ॥ ३८ ॥
तिनतें एनो आतरो, ते आरम्भ वितीत।
इनके अलपारम्भ है, क्रोध लोभ छल जीत ॥ ३६ ॥

लख्यौ आपनों तत्व जिन, नहिं मायासों मोह।
तजै राग दोषादि सब, काम क्रोध पर द्रोह ॥ ४० ॥
कछु इक धनको लेस है, तातें घरमे वास।
जे इनकी सेवा करें, ते पावे सुखरास ॥ ४१ ॥

छन्द चाल।

अब सुनि अष्टम पडिमा ए, त्रस थावर जीवदया ए।
कछु ही धंधा नहिं करनों, आरम्भ सबै परिहरनो ॥ ४२ ॥
भजनो जिनको जगदीसा, तजनो जगजाल गरीसा।
तनसो नहिं स्वामित धरनो, हिंसासो अतिही डरनों ॥४३
श्रावकके भोजन करई, नवमी सम चेष्टा धरई।
नवमीतें एतो अन्तर, ए है कछुयक परिग्रह धर ॥४४॥
वन माहीं थोरो रहनो, शीतोष्ण जु थोरो सहनों।
जे नवमी पडिमावंता, जगके त्यागी विकमता ॥४५॥
जिन धातु मात्र सब नाखे, कपडा कछुयक ही राखे।
श्रावकके भोजन भाई, नहिं माया मोह धराई ॥ ४६ ॥
आवै जु बुलाये जीवा, जिनको नहिं माया छीवा।
है दशमीते कछु नूना, परिकीय कर्म अब चूना ॥४७॥
एतो ही अंतर उनते, कबहुक लौकिक बचननतें।
बोलें परि विरकतभावा, धनको नहिं लेश धरावा ॥४८॥
आतेकों अनुकारा, जातें सो हल भल धारा।
दसमीतें अतिहि उदासा, नहिं लौकिक वचन प्रकाशा ॥४९॥
सप्तम अष्टम अर नवमा, ए मध्य सरावग पडिमा।
मध्यनिमें मध्य जु पात्रा, व्रत शील ज्ञान गुण गात्रा ॥५०॥

अथवा हो श्राविक शुद्धा, व्रतधारक शील प्रबुद्धा।
जो ब्रह्मचारिणी बाला, आजनम शील गुण माला ॥५१॥
सो मध्यम पात्रा मध्या, जानों व्रत शील अवध्या।
अथवा निजपतिको त्यागै, सो ब्रह्मचर्य अनुरागै ॥५२॥
सो परमश्राविका भाई, मध्यनिमे मध्य कहाई।
इनको जो देय अहारा सो ह्वै भवसागर पारा ॥५३॥

दोहा—अन्न वस्त्र जल औषधी, पुस्तक उपकरणादि।
थान नान दान जु करै ते भव तिरै अनादि ॥५४॥
हरै सकल उपसर्ग जे, ते निरुपद्रव होहिं।
सुरनर पति ह्वै मोक्षमें, राजै अति सुखसो हि ॥५५॥

छन्द चाल।

जो दशमी पडिमा धारा, श्रावक सु विवेकी चारा।
जग धंधाको नहिं लेसा, नहिं धंधाको उपदेशा ॥५६॥
बनमे हु रहै वर वीरा, ग्रामे हु रहै गुणधीरा।
आवै श्रावक घरि जीवा, नहि कनकादिक कछु छीवा ॥५७॥
एका दशमीतैं छोटे, परि और सकलतें मोटे।
जिनबानी बिन नहिं बोले, जे कितहू चित्त न डोलें ॥५८॥
मुनिवरके तुल्य महानर, दशमी एकादशमी धर।
एकादशमी द्वै भेदा, एलिक छुल्लक अघछेदा ॥५९॥
इनसे नहिं श्रावक कोई, सबमे उतकिष्टे होई।
त्यागौ जिन जगत असारा, लाग्यौ जिन रंग अपारा ॥६०॥
पायौ जिनराज सुधर्मा, छाड़े मिथ्यात अधर्मा।
जिनके पंचम गुणठाणा, पूरणतारूप विधाना ॥६१॥

द्वै माहिं महंत जु ऐला, निश्चलता करि सुरशैला।
जिनके परिग्रह कोपीना, अर कमंडल पीछी तीना ॥६२॥
जिनसासनको अभ्यासा, वभावनिसू जु उदासा।
श्रावकके घर अविकारा, ले आप उदंड अहारा ॥६३॥
गुणवान साध सारीसा, लुञ्चितकेसा विनरीसा।
ए ऐलि त्रिवर्णा होई, शूद्रा नहिं ऐलि जु कोई ॥६४॥
इनतें छुल्लक कछु छोटे, परि और सकलतें मोटे।
इक खंडित कपरा राखें, तिनको छुल्लक जिन भाखें ६५
कमंडलु पीछी कोपीना, इन बिन परिग्रह तजि दीना।
जिनश्रुति अभ्यास निरंतर, जान्यूं है निज पर अंतर । ६६ ।
ले हैं जु उदड विहारा, ले भाजनमाहिं अहारा।
कातरिका केस करावै, ते छुल्लक नाम कहावे । ६७ ।
चारों हैं वर्ण जु छुल्लक, राखें नहिं जगसूं तहलुक।
आनन्दी आतमरामा, सम्यकदृष्टी अभिरामा ।। ६८ ।
ए द्वै हैं भेद बड भाई, ग्यारम पडिमा जु कहाई।
वन माहिं रहैं वर वीरा, निरभै निरव्याकुल धीरा । ६९ ।
तिनकी करि सेव जु भाया, जो जीवनिको सुखदाया।
तिनके रहनेकों थाना, वनमें करने मतिवाना । ७० ।
भोजन भेषज जिनग्रन्था, इनकों दे सो निजपंथा—
पावै अर दे उपकरणा, सो हरै जनम जर मरणा । ७१।
उपसर्ग उपद्रव टारै, ते निरभै थान निहारैं।
दसमी अर ग्यारम दोऊ, मध्यम उतकिष्टे होउ । ७२
अथवा आर्या व्रतधारी, अणुव्रतमें श्रेष्ठ अपारी।

आर्या घरबार जु त्यागै, श्रीजिनवरके मत लागै । ७२ ।
राखै इक वस्त्र हि मात्रा, तप करि है क्षीण जु गात्रा ।
कमडल पीछी अर पोथी'—ले भूति तजी सहु थोथी ।७४
थावर जंगम तनवाना, जानें सब आप समाना ।
जे मुनि करि पात्र अहारा, सिर लोच करें तप धारा । ७५
तिनकी सो रीति जु धारै जगसो ममता नहि कारै ।
द्विज क्षत्री वणिक कुला ही, ह्वै आर्या अति विमलाही ।७६
अणुव्रत परि महाव्रत तुल्या, नारिनमें एहि अतुल्या ।
माता त्रिभुवनकी भाई, परमेसुरसों लवलाई । ७७
आर्याकों वस्त्र जु भोजन, देनें भक्ती करि भोजन।
पुस्तक औषधि उपकरणा, देनें सहु पाप जु हरणा ।७८
उपसर्ग हरै बुधिवाना, रहनेकों उत्तम थाना ।
देवे पुन वह अविनासी, लेवै अति आनंदरासी । ७९

दोहा—छै पडिमा जानों जघनि, मध्य जु नवमी ताई ।
कस एकादशमी उभौ, उतकृष्टी कहवाई । ८०।
पतिव्रता जो श्राविका, मध्यम माहिं जघन्य ।
ब्रह्मचारिणी मध्य है, आर्या उत्तम धन्य । ८१
पंचम गुण ठाणो व्रती, श्रावक मध्य जु पात्र।
छठें सातवें ठाण मुनि, महामात्र गुणगात्र।८२
कहे मध्यके भेद त्रय अर उतकिष्टे तीन ।
सुनो जघन्य जु पात्रके, तीन भेद गुणलीन । ८३
चौथे गुणठाणे महा, क्षायक सम्यकवन्त ।
सो उतकिष्टे जघनिमें, भाषे श्रीभगवन्त । ८४

क्रोध मान छल लोभ खल, प्रथम चौकरी जानि।
मिथ्या अर मिश्रहि तथा, समै प्रकृति परवानि। ८५
सात प्रकृति ए खय गई, रह्यौ अलप संसार।
जीवनमुक्त दशा धरै, सो क्षायकसम धार। ८६
सातो जाके उपसमें, रमै आपमें धीर।
सो उपसम-सम्यक धनी, जघनि माहि मधिवीर। ८७
सात मांहि षट उपसमें, एक तृतीय मिथ्यात।
उदै होय है जा समें, सो वेदक विख्यात। ८८
वेदक सम्यकवन्त जो, जघनि जघनिमें जानि।
कहे तीन विधि जघनि ए, निज आज्ञा उर आनि ॥८९॥
जघनि पात्रकूं अन्न जल, औषध पुस्तक आदि।
वस्त्राभूषण आदि शुभ, थान मान दानादि ॥९०॥
देवो गुरु भाषें भया, करनो बहु उपगार।
हरनी पीरा कष्ट सहु, धरनों नेह अपार ॥९१॥
सब ही सम्यकधारका, सदा शांत रसलीन।
निकट भव्य जिनधर्मके,—धोरी परम प्रवीन ॥९२॥
नव भेदा सम्यक्तके, तामे उत्तम एक।
सात भेद गनि मध्यके, जघनि एक सुविवेक ॥९३॥
वेदक एक जघन्य है, उत्तम क्षायक एक।
और सबै गनि मध्य ए, इह धारौ जु विवेक ॥९४॥
क्षयोपसम वरतै त्रिविध, वेदक चारि प्रकार।
क्षायक उपसम जुगल जुत, नौधा समकित धार ॥९५॥
वेदक कछुयक चंचला, तौपनि भर्म उछेद।

लखौ आपकी शुद्धता, जानें निज पर भेद ॥९६॥
सेवा जोग्य सुपात्र ए, कहे जिनागम माहिं।
भक्ति सहित जे दान दें, ते भवभ्रांति नसाहिं ॥९७॥
त्रिविध पात्रके भेद नव, कहे सूत्र परवान।
मुनिको नवधा भक्ति करि, देहि दान बुधिमान ॥९८॥
विधिपूर्वक शुभ वस्तुकों, स्वपर अनुग्रह हेत।
पातरकों दान जु करै, सो शिवपुरको लेत ॥९९॥
नवधा भक्ति ज कोनसी, सो सुनि सूत्र प्रवानि।
मिथ्या मारग छाडि करि, निज श्रद्धा उर आनि ॥१००॥
आवौ आवौ शबद कहि, तिष्ट तिष्ट भासेहि।
सो संग्रह जानों बुधा, अघ-संग्रह टारेहि ॥१॥
ऊंचौ आसन देय शुभ, पात्रनिकों परवीन।
पग धोवै अरचै बहुरि, होय बहुत आधीन ॥२॥
करै प्रणाम विनै करी, त्रिकरण शुद्धि धरेहि।
खानपानकी शुद्धता, ये नव भक्ति करेहि ॥३॥
सुनों सात गुण पंडिता, दातारनिके जेह।
धारै धरमी धीर नर, उधरै भवजल तेह ॥४॥
इह भव फल चाहै नहीं, क्रियावान अति होय।
कपट रहित ईर्षा रहित, धरै विषाद न सोय ॥५॥
हुई उदारता गुण सहित, अहंकार नहिं जानि।
ए दाताके सप्त गुण, कहे सूत्र परवानि ॥६॥
श्रद्धा धरि निज शक्तिजुत, लोभ रहित ह्वै धीर।
दया क्षमा दृढ़ चित्त करि, देय अन्न अर नीर ॥७॥

रागदोष मद भोग भय, निद्रा मन्मथपीर ।
उपजावै जु असंजमा, सो देवौ नहिं वीर ॥८॥
यह आज्ञा जिनराजकी, तप स्वाध्याय सु ध्यान ।
बुद्धिकरण देवौ सदा, जाकरि लहिये ज्ञान ॥९॥
मोक्ष कारणा जे गुणा, पात्र गुणनके धीर ।
तातें पात्र पुनीत ए, भाषें श्रीजिनवीर ॥१०॥
संविभाग अतिथीनको, व्रत बारमों सोइ ।
दया तनों कारण इहै, हिंसा नाशक होइ ॥११॥
हिंसाके कारण महा लोभ असकी खानि ।
दान करै नासै भया, इह निश्चै उर आनि ॥१२॥
भोग रहित निज जोग धरि, परमेसुरके लोग ।
जिनके दर्शन मात्र ही, मिटै सकल दुख सोग ॥१३॥
मधुकर वृति धारें मुनी, पर पीडा न करेय ।
पुन्यजोग आवै धरें, जिन आज्ञा जु धरेय ॥१४॥
तिनकों जो सु अहार दे, ता सम और न कोई ।
दानधर्मतें रहित जे, किरपण कहिये सोइ ॥१५॥
कियौ आपने अर्थ जो, सो ही भोजन भ्रात ।
मुनिकों अरति विषाद तजि, सो भवपार लहात ॥१६॥
शिथिल कियौ जिह लोभको, परम पंथके हेत ।
तेई पात्रनिकों सदा, विधि करि दान जु देत ॥१७॥
सम्यकदृष्टी दान करि, पावै पुर निरवान ।
अथवा भव धरनों परै, तौ पावै सुरथान ॥१८॥
बिन सम्यक्त जु दान दे, त्रिविधि पात्रको जोहि ।

पावै इन्द्री भोग सुख, भोगभूमिमें सोहि ॥१९॥
उत्तम पात्र सु दानतें, भोगभूमि उतकिष्ट।
पावै दशधा कल्पतरु, जहा न एक अनिष्ट ॥२०॥
मध्य पात्रके दान करि, मध्य भोगभू माहिं।
जघनि पात्रके दान करि, जघनि भोगभू जाहिं ॥२१॥
पात्रदानको फल इहै, भाषें गणधरदेव।
धन्य धन्य जो जगतमें, करें पात्रकी सेव ॥२२॥

छन्द चाल

देने औषध सु अहारा, देने श्रुत पाप प्रहारा।
रहनेको देनी ठौरा, करने अति ही जु निहौरा ॥२३॥
हरने उपसर्ग तिनूंके, धरनें गुण चित्त जिनूंके।
सुख साता देनी भाई, सेवा करनी मन लाई ॥२४॥
ए नवविधि पात्र जु भाखे, आगम अध्यातम साखे।
बहुरि त्रय भेद कुपात्रा, धारे वाहिज व्रतमात्रा ॥२५॥
जो शुभ किरिया करि युक्ता, जिनके नहिं रीति अयुक्ता।
सम्यकदर्शन बिन साधू, तप संयम शील अराधू ॥२६॥
पावे नहिं भवजल पारा, जावे सुरलोक बिचारा।
पहुंचे नव ग्रीव लगै भी, जिनतै अघकर्म भगै भी ॥२७॥
पण भावलिंग विनु भाई, मिथ्यादृष्टी हि कहाई।
द्रविलिंगि धार जति जेई, उतकिष्ट कुपात्रा तेई ॥२८॥
जे सम्यक बिन अणुव्रत्ती, द्रवि श्रावकव्रत प्रवृत्ती।
ते मध्य कुपात्र बखानें, गुरुने नहि श्रावक मानें ॥२९॥
आपा पर परच नाहीं, गनिये बहिरातम माहीं।

षोडस सुरगोंलों जावें, आतम अनुभव नहिं पावें ॥३०॥

दोहा—जघनि कुपात्रा अव्रती, बाहिर धर्मप्रतीति।
दीखें समदृष्टि समा, नहिं सम्यकको रीति ॥३१॥
शुभगति पावौ तौ कहा, लहै न केवल भाव।
ये संसारी जानिये, भाषैं श्रीजिन राव ॥३२॥
इनको जानि सुपात्र जो, धारें भक्ति विधान।
सो कुभोग भूमी लहै, अल्पभोग परवान ॥३३॥
पर उपगार दया निमित्त, सदा सकलको देय।
पात्रनिकी सेवा करै, सो शिवपुर सुख लेय ॥३४॥
नहिं श्रावक नहिं व्रत जती, नहिं श्रावक व्रत जानि।
नहिं प्रतीति जिन धर्मकी, ते अपात्र परवानि ॥३५॥
विनै न करनौं तिन तनौं, दया सकल परिजोग।
करनी भक्ति सु पात्रकी, भक्ति अपार अजोगि ॥३६॥
करनी करुणा सकल परि, हरनी सबकी पीर।
करनी सेवा सन्तकी, इह भाषै श्री वीर ॥३७॥
पात्रापात्र द्विभेद ए, कहे सूत्र अनुसार।
अब सुनि करुणादानको, भेद विविध परकार ॥३८॥
सब आतमा आपसे, चेतनगुण भरपूर।
निज परको पहिचान बिन, भ्रमे जगतमें क्रूर ॥३९॥
उदै कर्मके हैं दुखो, आदि व्याधिके रूप।
परे पिण्डमें मूढ़धी, लखैं नहीं चिद्रूप ॥४०॥
तिन सब पर धरिके दया, करैं सदा उपगार।
नर तिर सबही जीवको, हरै कष्ट व्रतधार ॥४१॥

अपनी शक्ति प्रमाण जो, मेटैं परकी पीर ।
तन मन धन करि सर्वको, साता दे वर वीर ॥४२॥
अन्न वस्त्र जल औषधी, त्रण आदिक जे देय ।
जाने अपने मित्र सहु, करुणा भाव धरेय ॥४३॥
बाल वृद्ध रोगीनको, अति ही जतन कराय ।
अंध पंगु कुष्टि न परि, करे दया अधिकाय ॥४४॥
बन्दि छुडावै द्रव्य दे, जीव बचावै सर्व ।
अभैदानदे सर्वको, धरै न धनको गर्व ॥४५॥
काल दुकाले मांहि जो, अन्नदान बहु देय ।
रंकनिको पोहर जिकौ, नर भवको फल लेय ॥४६॥
जाको जगमें कोउ नहीं, ताको भीरी माइ ।
दुरबलको बल शुभ मती, प्रभुको दास कहाइ ॥४७॥
शीतकालमें शीत हर, दे वस्त्रादिक वीर ।
उस्णकालमें तापहर, वस्तु प्रदायक धीर ॥४८॥
वर्षा काले धर्म धी, दे आश्रय सुखदाय ।
जल बाधा हर वस्तु दे, कोमल भाव धराय ॥४९॥
भांति भातिके औषधी, भाति भातिके चीर ।
भाति भातिकी वस्तु दे, सो जैनी जगवीर ॥५०॥
दान विधी जु अनन्त है, कौ लग करे बखान ।
जाने श्रीजिनराजजु, किह दाता बुधिवान ॥५१॥
भक्ति दया द्वै विधी कही, दान धर्मकी रीति ।
ते नर अङ्गीकृत करें, जिनके जैन प्रतीति ॥५२॥
लक्ष्मी दासी दानकी, दान मुकतिको मूल ।

दान समान न आन कोउ, जिन मारग अनुकूल ॥५३॥
अतीचार या व्रतके, तजै पञ्च परकार ।
तब पावै व्रत शुद्धता, ल्है धर्म अवतार ॥५४॥
भोजनको मुनि आवहीं, तब जो मूढ़ कदापि ।
मनमें ऐसी चिंतवै, दान-करन्ता क्वापि ॥५५॥
लगि है वेला चूकिहौं, जगतकाज तें आज ।
तातें काहूको कहै, जाय करै जग काज ॥५६॥
मो बिन काम न होइगो, तातें जानों मोहि ।
दान करेंगे भ्रातृ-सुत, इहहू कारिज होंहि ॥५७॥
धनको जाने सार जो, धर्म हि जाने रञ्च ।
सो मूढ़नि सिरमौर है, घटमे बहुत प्रपंच ॥५८॥
कहै भ्राति पुत्रादिको, दानतनों शुभ काम ।
आप सिधारे जड़ मती, जग धधाके ठाम ॥५९॥
परदात्री उपदेश यह, दूषण पहलो जानि ।
पराधीन हू या थकी, यह निश्चय उर आनि ॥६०॥
मुनि सम हूवै गो धन कहा, इह धारै उर धीर ।
भुक्ति मुक्ति दाता मुनी, पट गायनिके वीर ॥६१॥
फुनि सचित्त निक्षेप है, दूजौ दोष अजोगि ।
ताहि तजें तेई भया, दान व्रतको जोगि ॥६२॥
सचित वस्तु कदली दला, ढाक पत्र इत्यादि ।
तिनमें मेली वस्तु जो, मुनिको देवौ वादि ॥६३॥
दोष लगै जु सचित्तको, मुनिके अचित आहार ।
तातैं सचितनिक्षेपको, त्याग करै व्रत धार ॥ ६४ ॥

तीजौ सचितविधान है, ताहि तजौ गुणवान ।
कमलपत्र आदिक सचित, तिन करि ढाक्यौ धान ॥ ६५ ॥
नहिं देनो मुनिरायको, लगै सचितको दोष ।
प्रासुक आहारी मुनी, व्रत तप संजम कोष ॥ ६६ ॥
काल उलंघन दानको, योग्य होत नहिं दान ।
सो चौथो दूषण भया त्यागै, ते मतिवान ॥ ६७ ॥
है मच्छरता पंचमों, दूषण दुखकी खानि ।
करै अनादर दानको, ता सम मूढ न आनि ॥ ६८ ॥
देखि न सकै विभूति पर, परगुण देखि सकै न ।
सहि न सकै पर उच्चता, सो भवश्राम तजै न ॥ ६९ ॥
नहिं मात्सर्य समान कोउ, दूषण जगमें आन ।
जाहि निषेधे सूत्रमे तीर्थंकर भगवान ॥ ७० ।
अतीचार ए दानके कहे जु श्रुत अनुसार ।
इनके त्याग किये शुभा, होवै व्रत अविकार ॥ ७१ ।
नमों नमो चउदानको , जे द्वादश व्रत-भूल ।
भोजन भेषज भे हरण ज्ञानदान हर भूल । ७२ ।
भोजन दाने ऋद्धि ह्वै' औषध रोग निवार ।
अभैदानते निर्भया, श्रुति दानें श्रुति पार । ७३ ।
कहे व्रत द्वादश सबै, दया आदि सुखदाय ।
दान प्रजंत शुभंकरा, जिन करि सब दुख जाय । ७४ ।
एक एक व्रतके कहे, पंच पंच अतिचार ।
पालें निरतीचार व्रत, ते पावें भव पार ॥७५ ॥
सम्यक बिन नहिं व्रत ह्वै व्रत बिन नहिं बैराग ।

बिन वैराग न ज्ञान ह्वै राग तजें बड़भाग ॥ ७६ ॥

छन्द चाल

अब सुनि सब व्रतको कोटा, देशावकाशिव्रत मोटा ।
ताकी सुनि रीतिजु भाई जैसी जिनराज बताई ॥ ७७ ।
पहले जु करौ परमाणा, दिसि विदिशाको विधि जाणा ।
इन्द्री विषययनको नेमा, कीयौ धरि व्रतसों प्रेमा ॥ ७८ ।
धन धान्य अन्न वस्त्रादी, भोजन पानाभरणादी ।
मरजादा सबकी धारी, जीवितलों धर्म सम्हारी ॥ ७६
जामें मरजादा बरसी, तामें छै मासी दरसी ।
करनी चउमासी तामे, बहुरि द्वै मासी जामे ॥ ८० ।
ताहूमे मासी नेमा, मासीमे पाखी प्रेमा ।
पाखीमे आधी पाखी, जाहूंमें दिन दिन भाखो ॥ ८१ ।
दिन माहीं पहरा धारै, पहरनिमें घरी विचारै ।
पल पलके धारै नेमा, जाके जिनमनसो प्रेमा ॥ ८२
भोगनिसों घटतो जाई, व्रत है चढ़तो अधिकाई ।
सीमामें सीमा कारै, जिन मारग जनतैं धारें ॥ ८३ ॥
ह्वै बाडि फले क्षेत्रनिके, जैसे कोट जु नगरीके ।
तैसे यह द्वादश व्रतके, देशावकाशि व्रत सबके ॥ ८४ ।
देसावकाशि व्रत माहीं, सतरा नेम जु सक नाहीं ।
तिनकी सुनि रीति जु मित्रा, जिन करि ह्वै व्रत पवित्रा ।८५।

दोहा—नियम किये व्रत शोभा ह्वा, नियम बिना नहिं शोभ ।
तातें व्रत धरि नेमकों, धारै तजि मद क्षोभ ।८६।

सातरा नेमके नाम उक्त च श्रावकाचारे—

भोजने षटरसेपाने, कुंकुमादिविलेपने।
पुष्पताबूलगीतेषु, नृत्यादौ ब्रह्मचर्यके ॥ १ ॥
स्नानभूषणवस्त्रादौ, वाहने शयनाशने।
सचित्तवस्तुसख्यादौ, प्रमाण भज प्रत्यहम् ॥२॥

चौपाई—भोजनकी मरजादा गहै, वारंबार न भोजन लहै।
पर घर भोजन तोहि जु करै, प्रात समै जो संख्या धरै ।८७।
अन्न मिठाई मेवा आदि, भोजन माहि गिने जु अनादि।
बहुरि चवेणीं अर पकवान, भोजन जाति कहे भगवान ।८८।
सब मरजादा माफिक गहै, वारबार ना लीयौ चहै।
षट रसमें राखे जो रसा, सोई लेय नेममे बसा ।८९।
और न रस चाखौ बुधिवन्त, इह आज्ञा भाषें भगवन्त।
कामउदीपक हैं रसजाति, रस परित्याग महातप भाति ।९०।
जो रसजाति तजी नहिं जाय, करि प्रमाण जियमें ठहराय।
पानी सरबत दूधरु मही, इत्यादिक पीवेके सही ।९१।
तिनमे लेवौ राखै जोहि, ता माफिक लेवौ बुध सोहि।
चोवा चन्दन तेल फुलेल, कुंकुम और अरगजा मेल ।९२।
औषधि आदि लेप है जेह, संख्या विन न लगावै तेह।
जाने येह देह दुरगन्ध, वाके कहा लगावे सुगन्ध ।९३।
जो न सर्वथा त्यागै वीर, तोहु प्रमाण गृहै नर धीर।
पहुप जाति सो छाड़ै प्रेम अति दोषीक कहे गुरु एम ।९४।
भोग उदै जो त्यागि न सकै, थोरे लेप पाप तें सकै।
पान सुपारी डोढ़ा आदि, लौंगादिक मुखसोध अनादि ।९५।

बालखिनी जावित्री आनि, जातीफल इत्यादि बखानि ।
सबमें पान महादोषीक, जैसे पापनि माहिं अलीक ।९६।
पान त्यागिबौ जावो जीव, पापनिमें प्राणी जु अतीव ।
जो अतिभोगी छांडि न सके, थोरे खाय दोषतें सके ।९७।
गीत नृत्य वादित्र जु सर्व, उपजावे अति मनमथ गर्व ।
ए कौतूहल अधिके बन्ध, इनमें जो राचे सो अन्ध ।९८।
जो न सर्वथा छाडे जाय, तोहु अधिक न राग धराय ।
मरजादा माफिक ही भजै, औसर पाय सकल ही तजै । ९९।
एक भेद या माहीं और, आपुन बैठो अपनी ठौर ।
गावत गीत त्रिया नीकली, सुनिकर हरषे चितधारि रली ।१००।
तामें दोष लगे अधिकाय, भाव सराग महा दुखदाय ।
पातरि नृत्य अखारे माहिं, नट नटवा अथ नृत्य कराहिं ।१।
वाजीगर आदिक बहु ख्याल, बिनु परमाण न देखौ लाल ।
अब मुनि ब्रह्मचर्यकी बात, याहि जु पाले तेहि उदात्त ॥ २ ॥
परनारीको है परिहार, निजनारीमें इह निरधार ।
जावो जीव दिवसको त्याग, रात्रि विषै हू अलपहि राग ॥३ ॥
पाचूं परवी सील गहेय, अर सब व्रतके दिवस धरेय ।
कबहुक मैथुन सेवन परै, सो मरजादा माफिक करै ॥ ४ ॥
महा दोषको मूल कुशील, या तजिवेमें ना करि ढील ।
सेवत मनमथ जीव विघात, इहै काम है अति उतपात ॥ ५ ॥
जो न सर्वथा त्याग्यौ जाहि, तौहू अलप सेववौ ताहि ।
नदी तलाब वापिका कूप, तहां जात न्हावौ जु विरूप ॥ ६ ॥
जो न्हावे बिनछाणों जले, ते सब धर्म कर्मतैं टलैं ।

जैसो रुधिरथकी ह्वै स्नान, तैसो अनगाले जलज्ञान ॥ ७ ॥
अचित्त जले न्हावे है भया, प्रासुक निर्मल विधिकरि लया ।
ताहूकी मरजादा धरै, बिना नेम कारिज नहिं करै ॥ ८ ॥
रात्री न्हावे नाहिं कदापि, जीव न सूझे मित्र कदापि ।
हिंसा सम नहिं पाप जु और दया सकल धर्मनि कर मौर ॥९॥
आभूषण पहिरे हैं जिते, घरमें ओर धरै हैं तिते ।
नियम बिना नहिं भूषण धरै, सकल वस्तुकौ नियम जु करै ॥१०
परके दीये पहरै जेहि, नियम माहिं राखै हैं तेहि ।
रतनत्रय भूषण बिनु आन, पाहन सम जाने मतिवान ॥ ११ ॥
वस्त्रनिकी जेती मरजाद, ता माफिक पहरै अविवाद ।
अथवा नये ऊजरे और, नियमरूप पहरै सुभतौर ॥ १२ ॥
सुसरादिकके दीने भया, अथवा मित्रादिकते लया ।
राजादिकने की बकसीस, अदभुत अंबर मोल गरीस ॥ १३ ॥
नित्यनेममें राखै होइ, तौ पहिरै नहिंनरि नहिं कोइ ।
पावनिकी पनही हैं जेहि, तेऊ वस्त्रनि माहिं गिनेहि ॥ १४ ॥
नई पुरानी निज परतणी, राखै सो पहिरै इम भणी ।
पनही तजै पहरवौ भया, तौ उपजै प्राणिनिकी दया ॥ १५ ॥
रथवाहन सुखपाल इत्यादि, हस्ती ऊंटरु घोटक आदि ।
एहैं थलके वाहन सबै, फुनि विमान आदिक नभ फबै ॥ १६ ॥
नाव जिहाज आदि जलकेह, इनमें ममता नाहिं धरेह ।
कोइक जावो जीवै तजै, कोइक राखे नियमा भजै ॥ १७ ॥
तिनहूंमें निति नेम करेइ, बहु अभिलाषा छाडि जु देइ ।
मुनि ह्वौ चाहे मन मांहि, जगमाहीं जाको चित नाहिं ॥ १८ ॥

वाहन चढ़े होइ नहिं दया, तातैं तजैं धन्य ते भया ।
मुनि आर्या अर श्रावक बड़े, हैं जु निरारंभी अति छड़े । १९
ते वाहनको नाम मे धरे, जीवदया मारग अनुसरैं ।
आरम्भी श्रावक राजादि, तिनके वाहन है जु अनादि ॥ २० ।
तेऊ करै प्रमाण सुवीर, नित्यनेम धारैं जगधीर ।
तीर्थंकर चक्री अरु काम, फुनि ह्वै फिरैं पयादे राम ॥ २१ ॥
तातैं पगा चालिवौ भला, परसिर चलिवौ है अघमिला ।
इहै भावना भावत रहै, सोवेगो शिवकारन लहै ॥ २२ ॥
रतनत्रय शिवकारण कहे, दरसन ज्ञान चरण जिन लहे ।
अब सुनि शयनाशनको नेम, धारैं श्रावक व्रतसों प्रेम ॥ २३ ॥
जोहि पलंगपरि सोवौ तनों, सोहू शयन परिग्रह गनों ।
सौड़ दुलाई तकिया आदि, सब सज्जा माहिं अनादि ॥ २४ ॥
इनको नेम धरै व्रतवान, भूमि शयन चाहै मतिवान ।
भूमि शयन जोगीश्वर करैं, उत्तम श्रावक हू अनुसरैं ॥ २५ ॥
आरंभी गृहपतिके सेज, तेहू नियम सहित अधिकेज ।
जापरि परनारी सोवैहि, सो सज्जा बुध नहिं जोवैहि ॥ २६ ॥
निज सज्जा राखी है भया, ताहुमें परमित अति लया ।
व्रतके दिन भू सज्जा करै, भोग भावतैं प्रेम न धरै ॥ २७ ॥
गादी गाऊतकिया आदि, चौकी चौका पाट इत्यादि ।
सिंहासन प्रमुखा जेतेक, आसन माहिं गिनौ जु अनेक ॥ २८ ॥
गिलम गलीचा सतरंजादि, जाजम चादर आदि अनादि ।
इन चीजोंसे मोह निवार, जासें होय पार संचार ॥ २९ ॥
जेती जाति बिछौना कीहि सो सब आसन माहिं गनीहि ।

निज घरके अथवा परठाम, जेते मुकते राखे धाम ॥ ३० ।
तिनपरि वैसे और जु त्याग, है जाको व्रतसूं अनुराग।
सचित वस्तुको भोजन निंद, ताहि निषेधे त्रिभुवनचंद ॥ ३१ ॥
मुनि आर्या त्यागेंहि सचित्त, उत्तम श्रावक लेहि अचित्त ॥
पंचम पडिमा आदि सुधीर, एकादस पड़िमा लों वीर ॥ ३२ ॥
कबहु न लेइ सचित्त अहार, गहै सचित्त वस्तु अविकार ।
पहली पडिमा आदि चतुर्थ, पडिमा लों ले अचितहि अर्थ ॥ ३३॥
पै मनमें कम्पै सु विवेक, तजै सचित्त जु वस्तु अनेक।
केइक राखी तामें नेम, नितप्रति धारै व्रतसो प्रेम ॥ ३४ ॥
कहा कहावे वस्तु सचित्त, सो धारो भाई निज चित्त।
पत्र फूल फल छाड़ि इत्यादि, कूंपल मूल कंद बीजादि ॥ ३५ ॥
पृथ्वी पाणी अग्नि जु वायु एसहु सचित्त कहे जिनराय ।
जीव सहित जो पुद्गल पिंड, सो सब सचित तजै गुणपिंड ।३६
ये सहु जाति सचित्त तजेय, सो निहचै जिनराज भजेय ।
जो न सर्वथा त्यागी जाय, तौ कैयक ले नेम धराय ॥ ३७ ॥
संख्या सचित वस्तुकी करै सकल वस्तुका नियम जु धरै ।
गिनती करि राखै सब वस्तु, तबहि जानिये व्रत प्रशस्त ॥ ३८ ॥
लाडू पेडा पाक इत्यादि, औषधि रस अर चूरण आदि ।
वहुत बस्तु करि जे निप जेह, एक द्रव्य जानों बुध तेह ॥३९॥
वस्तु गरिष्ट न खावे जोग , ए सब काम तने उपयोग।
जो कदापि ये खाने परै, अलपथकौ अलपजु आहरै ॥ ४० ॥
सत्रह नेम चितारै नित्य, जानो ए सहु ठाठ अनित्य।
प्रातथकी सध्यालों करै फुनि सध्या समये बुध धरै ॥ ४१ ॥

एती वस्तु तौ त्यागे धीर, राति परै नहिं सेवै वीर ।
भोजन षटरस पान समस्त चंदनलेप आदि परसस्त ॥४२॥
तजे राति तंबोल सुवीर, दया धर्म उर धारै धीर ।
गीत श्रवण जो होय कदापि, राखै नेम माहिं सो क्वापि ॥ ४३
नृत्यहुमों नहिं जाको भाव, पैन सर्वथा छांड्यौ चाव ।
जौ लग गृहपति कवहुक लखौ, सोहु नेममाहि जो रखौ ॥ ४४ ॥
ब्रह्मचर्यसों जाको हेत, परनारीसों वार सचेत ।
निज नारीहीमे संतोष, दिनकौ कबहु न मनमथ पोष ॥ ४५ ॥
रात्रिहुमे पहले पहरौ न, चोथी पहरौ मनमथको न ।
दूजी तीजी पहर कदापि, पर सेवनो मैथुन क्वापि ॥ ४६ ॥
सोहू अलपथकी अति अलप, नित प्रति नहिं याको संकल्प ।
राखै नेम माहिं सहु बात, विना नेम नहिं पाव धरात ॥ ४७ ॥
स्नान रातिकों कबहु नकरै, दिनको स्नान तनी विधि धरै ॥
भूषण वस्त्रादिकको नेम, राखै जाविधि धारै प्रेम ॥ ४८ ॥
वाहन शयनाशनकी रीत, नेम माहिं धारै सहु नीति ।
वस्तु सचित नहिं निसिकों भखै, रजनीमें जलमात्र न चखै ।४९
खान पानको वस्तु समस्त, रात्रि विषे कोई न प्रशस्त ।
याविधि सतरा नेम जु धरै, सो व्रत धारि परम गति वरै ।५०
नियम विना धृग धृग नर जन्म, नियमवान होवहिं आजन्म ।
यमनियमासन प्रणायम प्रत्याहार धारणा राम ॥ ५१ ॥
ध्यान समाधि अष्ट ए अंग, योगतने भाषे जु असंग ॥
सबमें श्रेष्ट कही सुसमाधि, नियमथकी उपजै निरुपाधि ॥ ५२
रागदोषको त्याग समाधि, जाकरि टरै आधि अरु व्याधि ।

परम शातता उपजै जहां, लहिए आतम भाव जु तहां ॥ ५३ ॥
मरण काल उपजै जु समाधि, आय प्राप्त ह्वै आधिक व्याधि ।
नित्य अभ्यासी होय समाधि, तौ न नीपजै एक उपाधि ॥ ५४॥
जो समाधितें छोडे प्राण, तौ सदगति पावैहि सुजाण ॥
नाहिं समाधिसमान जु और, है समाधि व्रत्तनि सिरमौर ॥५५॥

छन्द चाल ।

अब सुनि सल्लेषण भाई जाकरि सहु व्रत सुघराई ।
उत्तम जन याकौं भावे, याकरि भवभ्राति नसावे ॥५६॥
जे द्वादश व्रत संजुक्ता, सल्लेखण कारई युक्ता ।
होवें जु महा उपशाता, पावें सुरसौख्य सुकाता ॥५७॥
अनुक्रम पहुंचै थिर थानै, परकी सहु परणति भानै ।
यह एकहु निर्मलव्रत्ता, समदृष्टी जो दृढचित्ता ॥५८॥
करई सो सुरपति होवै, फुनि नरपति ह्वै शिव जावै ।
इह भुक्ति मुक्ति दायक है, सब व्रतानिको नायक है ॥५९॥

सोरठा—मेरौ जो निजधर्म, ज्ञान सुदर्शन आचरण ।
सो नाशक वसु कर्म, भासक अमित सुभावको ॥६०॥
मैं भूल्यौ निज धर्म, भयौ अधर्मी जगविषें ।
तातें बाधे कर्म, कीये कुमरण अनन्त मैं ॥६१॥
मरि मरि चहुंगति माहि, जनम्यौ मैं शठ भ्राति धर ।
सो पद पायौ नाहिं, जहा जन्म मरण न ह्वै ॥६२॥
बिना समाधि जु मर्ण, मर्ण मिटै नहिं हमतनौं ।
यह एकैव जु सर्ण है सल्लेखण अति गुणी ॥६३॥
निज परणतिसों मोहि, एकत करिवे सक इहै ।

देख्यौ श्रुतिमें टोहि, ठौर ठौर याको जसा ॥६४॥
धरे निरन्तर याहि, अन्तिम सल्लेखण वरत ।
उपजै उपाम ताहि मरणकाल निहसङ्कता ॥६५॥
करिहों पण्डित मर्ण, किये बाल मर्ण अमित ।
ले जिनवरको सर्ण, तजिहों काया कारिमा ॥६६॥
जिन आज्ञा अनुसार, अवश्य करौंगो अन्नसन ।
सल्लेखन व्रत धार, इहै भावना निति धरै ॥६७॥

बेसरी छन्द ।

मरण काल धरियेगो भाई, परि याकों नित प्रति चितराई ।
व्रत अनागत या विधि पाले, या व्रत करि सहु दूषण टाले ।६८।
मरणो नाहीं आतमतामें, तातैं निरभै होय रहा मैं ।
पर सम्बन्ध अपनी काया, ताका नाता अवश्य बताया ।६९।
इनका ज्ञान हुए यह जीव, पावे निश्चय सुगति सदीव ।
मैं अनादि सिद्धों अविनाशी, सिद्धसमानो अति सुखरासी ।७०।
सो अनादि कालजुतैं भूल्यो, परपरणतिके रसमें फूल्यौ ।
पर परणति करि भयौ सदोषी, कर्म कलङ्क उपार्जक रोषी ।७१।
तातैं देह अनन्ती धारी, किये कुमर्ण अनन्ता भारी ।
मैं नहिं कबहूं उपज्यो मूवौ, मैं चेतन माया तें दूवौ ।७२।
मोतैं भिन्न सकल परभावा, मैं चिद्रूप अनन्त प्रभावा ।
भयो कषाय कलङ्कित चित्ता, मैं पापी अति ही अपवित्ता ।७३।
बहु तन धरिधरि डारे भाई, तन तजिवौ इह मरण कहाई ।
तातैं कुमरण मूल कषाया, क्षीण करे ध्याऊं जिनराया ।७४।
रागादिक तजि करौं सुमरणा, बहुरि न मेरे होइ कुमरणा ।

इहै धारना धरि व्रत धारी, दुर्बल करै कषाय जु सारी ।७५।
कै गुरुके उपदेशथकी जो, कै असाध्य लखि रोग भती जो।
मरन काल जानै जब नीरै, तब कायरता धरइन तीरै ।७६।
चउ अहार तजि च्यारि कषाया, तजि करि त्यागै च्यागी काया।
तन सम्बन्ध उदै मति आवौ, तनमें हमरौ नाहिं सुभावौ ।७७।
सोरठा—कर्म संयोगे देह, उपज्यौ सो नर रहायगो।
तातें यासौं नेह, करनौ सो अति कुमति है ॥७८॥
चौपाई—इहै भावना धारि विरागी, तजै कारिमा काय सभागी।
सो श्रावक पावै शुभ लोका, षोड़श सुर्ग लहै सुखथोका ७९
नर ह्वै फिर मुनिके व्रत धारै, सिद्ध लोकको शीघ्र निहारै।
सल्लेखण सम व्रत न दूजा, इह सल्लेखण त्रिभुवन पूजा ८०
तजि कषाय त्यागै बुध काया, सो सन्यास महा फलदाया।
सल्लेखण संन्यास समाधी, अनसन एक अर्थ निरुपाधी ८१
पंडित मरणा वीरिय मरणा, ये सब नाम कहैं जु सुमरणा।
समरणतै कुमरण सब नासै, अविनासी पद शीघ्र प्रकासै ८२
यह संन्यास न आतमघाता, कर्म विघाता है सुखदाता।
अर जो शठ करि तीव्र कषाया, जलमें डूबि मरै भरमाया ८३
जीवत गडै भूमिमें कुमती, सो पावै दुरगति अति विमती।
अगनि दाह ले अथवा विष करि, तजै मूढधी काया दुखकरि
शस्त्र प्रहारि जो त्यागै प्राणा, अथवा झंपापात बखाणा।
ए सब आतम घात बताये, इन करि बहु भव भव भरमाये
हिंसाके कारण ये पापा, हैं जु कषाय प्रदायक तापा।
तिन कौ क्षीण पारिवौ भाई, सो संन्यास कहै जिनराई ।८४।

जीवदयाकौ हेतु समाधी, विना समाधि मिटै न उपाधी।
दया उपाधि मिटै बिन नाहीं, तातैं दया समाधि ही माहीं
ब्रत शीलनिकौ सर्वस एही, इह संन्यास महा सुख देही।
मुनिकों अनशन शिवसुख देई, अथवा सुर अहमिंद्र करेई ८८
श्रावककों सुर उत्तम कारै, नर करि मुनि करि भवदधि तारै
उभय धर्मकौ मूल समाधी, मेटै सकल आधि अर व्याधी८९
कायर मरणें बहुत हि मूवा, अब धरि वीर मरण जगदूवा।
बहुत भेद हैं अनशनके जी, सबमें आराधन चउ ले जी ९०
दरसन ज्ञान चरन तप शुद्धा, ए चारौं ध्यावैं प्रतिबुद्धा।
निश्चय अर व्यवहार नयनि करि, चउ आराधन सेवैचितकरि
ताकौ सुनहु विचारि पवित्रा, जा करि छूटै भव भ्रम मित्रा
देव जिनेसर गुरु निरग्रंथा, सूत्र दयामय जैन सुपन्था ९२
नव तत्वनिकी श्रद्धा करिवौ, सो व्यवहार सुदर्शन धरिवौ
निश्चै अपनो आतमरामा, जिनवर सो अविनश्वरधामा९३
गुण-पर्याय स्वभाव अनन्ता, द्रव्यथकी न्यारे नहिं सन्ता।
गुण-गुणिकौ एकत्व सुलखिवौ, आतमरुचि श्रद्धाकौ धरिवौ
करि प्रतीति जे तत्वतनी जो, इनै कर्मकी प्रकृति घनी जो।
सो सम्यकदर्शन तुम जानों, केवल आतम भाव प्रधानों ९५
अब सुनि ज्ञान अराधन भाई, सम्यकज्ञानमयी सुखदाई।
नव पदार्थकौ जानैं भेदा, जिनवानी परमान सुवेदा ॥९६॥
पञ्च परम पदकों प्रभु जानै, भयौ जु दासा बोध प्रवानै।
इह व्यवहारतनों हि स्वरूपा, निश्चय जानै हूं जु अरूपा९७
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध प्रबुद्धा, अतुल शक्ति रूपी अनुरुद्धा ।९८॥

चेतन अनन्त गुणातम ज्ञानी, सिद्ध सरीखौ लोक प्रवान्नी।
अपनो भाव भायवो भाई, सो निश्चय ज्ञान जु शिवदाई ११
फुनि सुनि सम्यकचारित रतना, त्रसथावरकौ अतिहीजतना
आचरिवौ भक्ती जिन मुनिकी, आदरिवौ विधि जोहिसुपुनकी
पंच महाव्रत पंच सुसमिती, तीन गुपति धारै हि जु सुजती
अथवा द्वादस व्रत सुधरिवौ, श्रावक संजमकौ अनुसरिवौ १
ए सब है विवहार चरित्रा, निश्चय आतम अनुभव मित्रा।
जो सुस्वरूपाचरण पवित्रा, थिरता निजमें सो सु पवित्रा
ए रतनत्रय भाषे भाई, चौथौ सम्यकतप सुखदाई।
व्यवहारें द्वादश तप सन्ता, अनसन आदि ध्यान परजन्ता
निश्चै इच्छाकौ जु निरोधा, पर परणति तजि आतम सोधा
अपनो आतम तेजकरी जो, सो तप भाषहि कर्महरीजो ।४
ए चउ आराधन आराधै, सो सन्यास धरै शिव साधै।
अरहन्ता सिद्धा साधा जे, केवलि कथित सुधर्म दया जे ५
ए चउ शरणा लेइ सु ज्ञानी, ध्यावै परम ब्रह्मपद ध्यानी।
णमोकार मंतर जपतौ जो, ओंकार प्रणवै रटतौ जो ॥६॥
सोऽह अजपा अनादह सुनतौ, श्रीजिन विम्ब चित्तमोंमुनतौ
धर्मध्यान धरन्तौ धोरी, लगी जिनेसुर पदसों डोरी ॥ ७ ॥
ध्यावंतौ जिनवर गुन धीरो, निजरस रातौ विरकत वीरो
दुर्बल देह अनेह जगतसों, करि कषाय दुर्बल निज धृतिसों
क्षमा करै सब प्राणी गणसों, त्यागै प्राण लाय लव जिणसों
सो पण्डितमरणा जु कहावै, ताकौ जस श्रुतिकेवलि गावै ६
सल्लेखणाके बहुते भेदा, भाषे जिनमत पाप उछेदा।

है प्रायोपगमन सब माहैं, उत्तमसों उत्तम सक नाहैं ॥१०॥
ताकौ अर्थ सुनौ मनलाये, आकरि अपनों तत्व लखावे।
प्रायः कहिये मित्र सर्वथा, उप कहिये स्वसमीप निर्व्यथा ११
गमन जु कहिये जाग्रत होवौ, रात दिवस कबहू नहिं सोवौ
सो प्रायोपगमन संन्यासा, सर्व गुणाकरि धर्म अभ्यासा १२
निजकों बारंबार चितारै, क्षण क्षण चेतन तत्व निहारै।
जग संतति तजि होइ इकाकी, कीरति गावें श्रीगुरु ताकी ॥
तजै आहार विहार समस्ता, भजै विचार समस्त प्रशस्ता।
इह भव परभवकी अभिलाषा, जिन करि होइ निरोह अभासा
या जड तनकी सेवा आपुन, करै न करावै विधिसों थापुन
अति वैराग्य परायण सोई, तजै अनातम भाव सबोई १५
गहन वनें भू सज्जा धारी, निसप्रह जगतजोगथी भारी।
चित्त दयाल सहनशीलो जो, सहै परीषह नहिं ढीलौ जो १६
जो उपसर्ग थकी नहि कंपै, जाको कायरता नहिं चंपै।
भागो लोक प्रपंचथकी जो, परपरणति जातैं दिसिकी जो ॥
या संन्यास थकी जो प्राणा, त्यागै सो नहिं मुवौ सुजाणा।
सुर-शिवदायक है यह वृता, यामैं बुधजन करै प्रवृत्ता ॥१८॥
पञ्च अतीचारी जो त्यागै, तब संन्यास-पथकों लागै।
सो तजि पाचूं ही अतिचारा, ये तो सल्लेखण व्रत धारा १६
जीवित अभिलाषा अघ पहिला, ताकों सो गिनि लो यह गहिला
देखि प्रतिष्ठा जीयौ चाहै, सो सल्लेखण नहिं अवगाहै २०
दूजौ मरण तनीं अभिलाषा, जो धारै निज रस नहिं चाखा
रोग कष्ट करि पीड्यो अति गति, मरिवौ चाहै सो शठमति

तीजौ सुहृदनुराग सुगनिये, मित्रथकी अनुराग सु धरिये।
मरिवौ आनि बन्यूं परि मित्रा, मिल्यौ न हमसों जाहुपवित्रा
दूरि जु सज्जन तामैं भावा, मिलिबेको अति करहि अपावा
अथवा मित्र कनारे जो है, ताके मोक्षथकी मन मोहे ॥२३॥
यों अज्ञानथकी भव भरमै, पावै नहिं सल्लेखण धरमैं।
पुनि सुखानुबंधो है चोथो, सुख संसार तनों सहु थोथौ २४
या तनमें भुगते सुख भोगा, सो सब यादि करै शठ लोगा।
यो नहि जानें भव सुख दुख ए, तीन कालमैं नाही सुख ए
इनको सुख जाने जो भाई, भोदू इनसो चित्त लगाई।
सो दुख लहै अनंता जगके, पावै नहिं गुण जे जिनगमके।
पञ्चम दोष निदान प्रबंधा, जो धारइ सो जानहु अन्धा।
परभवमैं चाहे सुख भोगा, यों नहिं जानें ए सहु रोगा २७
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्रा, हूवो चाहे फुनि अहमिन्द्रा।
व्रतकों बेचै विषयनि साटे, सो जड कर्मबंध नहिं काटे २८
ए पाचो तजि धरइ समाधी, सो पावै सद्गति निरुपाधी।
या व्रत सम नहिं दूजौ कोई, सबमैं सार जु इह व्रत होई ॥
याकौ जस सुर नर मुनि गावैं, धीर चित्त यासों लव लावैं।
नमों नमों या सुमरणकों है, जो काटै जलदा कुमरणको है

दोहा — उदै होत सल्लेखणा, जाहिं निवारै भ्राति।
भाव बोध जु घटि विषैं, पइये परम प्रशान्ति ॥ ३१ ॥
कहे वरत द्वादश सबै, अर सल्लेखण सार।
अब सुनि तप द्वादश तनों, भेद निर्जराकार ॥ ३२ ॥
प्रथमहिं बारह तपविषैं, है अनशन अविकार।

जाहि कहैं उपवास गुरु, ताकौ सुनहु विचार ॥ ३३ ॥
इन्द्रिनिकी उपसांतता, सो कहिये उपवास।
भोजन करते हू मुनी, उपवासे अनदास ॥ ३४ ॥
जो इन्द्रिनिके दास हैं, अज्ञानी अविवेक।
करैं उपासा तउ शठा, नहिं व्रत धार अनेक ॥ ३५ ॥
मुनि श्रावक दोऊनिकों, अनसन अति गुणदाय।
जाकरि पाप विनाश ह्वै, भाषें श्रीजिनराय ॥ ३६ ॥
इन्द्रिनिको उपशांत करि, करै चित्तकौ रोध।
ते उपवासे उत्तमा, लहैं आपकौ बोध ॥ ३७ ॥
गनि उपवासे ते नरा, मन इन्द्रिनिकों जीति।
करैं वास चेतनविषैं, शुद्धभावसों प्रीति ॥ ३८ ॥
इस भव परभव भोगकी, तजि आशा ते धीर।
करम-निर्जरा कारणें, करैं उपास सु वीर ॥ ३९ ॥
आतम ध्यान धरै बुधा, कै जिन श्रुत अभ्यास।
तब अनसनकौ फल लहै, केवल तत्त्व अभ्यास ॥ ४० ॥
चऊ अहार विकथा चऊ, तजिवौ चारि कषाय।
इन्द्री विषया त्यागिवौ, सो उपवास कहाय ॥ ४१ ॥
द्वै विधि अनसनका कहैं, महामुनी श्रुतिमाहिं।
सावधि निरवधि गुण धरा, जाकरि कर्म नशाहिं ॥४२॥
एक दिवस द्वै तीन दिन, च्यारि पांच पखवार।
मासी द्वय त्रय च्यारि हू, मास छमास विचार ॥ ४३ ॥
वर्षावधि उपवास करि, करै पारनों जोहि।
सावधि अनसन तप भया, भाषै श्रीगुरु सोहि ॥ ४४ ॥

आयु-कर्म थोरौ रहै, तब ज्ञानी व्रत धीर।
जावोजीव तजै सबै, अनसन पान जगवीर ॥ ४५ ॥
मरणावधि अनसन करें, सो निरवधि उपवास।
जे धारैं उपवासलों, तेजु करैं अघ नाश ॥ ४६ ॥
करते थके उपासकों, जे न तजै आरम्भ।
जग धन्धेमें चित धरैं, तजै न शठमति दम्भ ॥ ४७ ॥
माहगहल चञ्चल दशा, लहै न फल उपवास।
कछुयक काय कलेशको, फल पावै जगवास ॥ ४८ ॥
कर्मनिर्जरा फल सही, सो नहिं तिनकों होइ।
इह निश्चै सतगुरू कहैं, धारै बुधजन सोइ ॥ ४९ ॥
धन्य धन्य उपवास है, देइ सासतौ वास।
अब सुनि अवमोदर्य को, दूजौ तप सुखरास ॥ ५० ॥
जो मुनि करैं अनादरी, तजि अहारकी वृद्धि।
प्रासुक योग सु अल्प अति, ले अहार तप-वृद्धि ॥५१॥
करै सु अवमोदर्यको, करै निर्जरा हेत।
नहिं कीरतिकौ लोभ है, सो मुनि जिन पद लेत ॥५२॥
श्रावक होइ जु व्रत करै, लेइ अलप आहार।
जप स्वाध्याय सु ध्यान ह्वै, मिटै अनेक विकार ॥५३॥
सध्या पोसह पडिक्कमण, तासौं सधै अदोष।
जो अहार बहुत न करै, धरै महागुण कोष ॥ ५४ ॥
कै अनसन अघ नाश कर, कै यह अवमोदर्य।
इन सम और न जगविषैं, ए तप अति सौंदर्य ॥ ५५ ॥
इन बिन कदे न जो रहै, सो पावै व्रतशुद्धि।

ध्यान कारवें जो करै, सो होवै प्रतिबुद्ध ॥ ५६ ॥
अरु जो मायावी अधम, धरि कीरतिकौ छोभ।
करै सु अलप अहारको, सो नहिं होइ अछोभ ॥ ५७ ॥
अथवा जो शठ अंध थी, यह विचार जियमाहिं।
करै सु अलप अहार जो, सोह व्रतधरि नाहिं ॥ ५८ ॥
जो करिहों जु अहार अति, तो जैसो तैसो हि।
मिलिहैं मोदक स्वादकरि, तातें इह न भलौ हि ॥ ५९ ॥
अलप अहार जु खाहुंगो, बहुत रसीली वस्तु।
इहै भावधरि जो करै, सो नहिं व्रत प्रशस्त ॥ ६० ॥
मिष्ट भोज्य अथवा सुजस,—कारण अलप अहार।
करै न फल तपको प्रवल, कर्म निर्जराकार ॥ ६१ ॥
केवल आतमध्यानके, अर्थ करै व्रतधार।
कै स्वाध्याय सु व्रतके, कारण अलप अहार ॥ ६२ ॥
अल्प अहारथकी क्षुधा, रोग न उपजै क्वापि।
निद्रा मनमथ आदि सहु, नाहिं पारै जु कदापि ॥ ६३ ॥
बहु अहार सम दोष नहिं; महा रोगकी खानि।
निद्रा मनमथ प्रमुख जो, उपजै पाप निदान ॥६४॥
लौकमाहिं कहवत इहै, मरै मूढ़ अति खाय।
कै विन बुद्धि जु बोझकों, भोंदू मरै उचाय ॥६५॥
तातैं घनों न खाइवौ, करिबो अलप अहार।
याहि करैं सतगुरु सदा, व्रतकौ बीज अपार ॥६६॥
व्रतपरिसंख्या तीसरौ तप ताकों सु विचार।
सुनं सुगुरु भाषैं भया, परम निर्जराकार ॥६७॥

मुनि उतरैं आहारकों, करि ऐसी परतिज्ञ।
मनमैं तौऊ छाटकों (?) सो धारौ तुम विज्ञ ॥६८॥
एक घरें नहिं पाय हो, तौ न आन घर जाहुं।
और कछू नहिं खायहों, यह मिलि हैं तौ खाहुं ॥६९॥
अथवा ऐसी मन धरैं, या विधिके तन चीर।
पहिरे होगी श्राविका तौ लेहूं अन नीर ॥७०॥
तथा विचारै सो सुधी कारौ वलधा जाहि।
धरै सींग परि गुडडला, मिलै पंथमैं मोहि ॥७१॥
आऊं भोजन कारनें, नातरि नहीं अहार।
इत्यादिक जे अटपटी, करैं प्रतिज्ञा सार ॥७२॥
व्रतपरि संख्या तप लहै, मुनिराय महंत।
श्रावक हू इह तप करै, कौन रीति सुनु संत ॥७३॥
प्रातहि संख्या विधि करै, धारइ सतरा नेम।
तासम कबहू व्रत करै, परिसंख्यासों प्रेम ॥७४॥
धारि गुप्ति चितवै सुधी, अपने चित्त मंझार।
साखि जिनेश्वर देव हैं, ज्ञायक ज्ञेय अपार ॥७५॥
और न जानें बात इह, जो धारै बुध नेम।
नहीं प्रेम भवभावसों, जप तप व्रतसों प्रेम ॥७६॥
अनायास भोजन समै, मिलि हैं मोहि कदापि।
रूखी रोटी मूंगकी, लेहं और न क्वापि ॥७७॥
इत्यादी जे अटपटी, धरैं प्रतिज्ञा धीर।
व्रतपरिसंख्या तप लहैं, ते श्रावक गंभीर ॥७८॥
अब सुनि चौथा तब महा, रस परित्याग प्रवीन।

मुनि श्रावक दोऊनिकां, भाषैं आतमलीन ॥७६॥
अति दुखको सागर जगत, तामैं सुख नहिं लेश ।
चहुंगति भ्रमण जु कब मिटै कटै कलंक अशेश ॥८०॥
जगके झूंठे रस सबै, एक रसस अतिसार ।
इहै धारना धर सुधा, होइ महा अविकार ॥८१॥
भवतैं अति भयभीत जो, डरयौ भ्रानणत धीर ।
निर्वानी निर्मान जो, चाखैं निजरस वीर ॥८२॥
विषहूते अति विषम जे, विषया दुखकी खानि ।
भवभव मोकूं दुख दियौ, सुख परणतिकों मांनि ॥८३॥
तातैं इनकौ त्यागकरि, धरौं ज्ञानकों मित्र ।
तप जो भव आतप हरै, कारण पुनीत पवित्र ॥८४॥
इह चितवतौ धीर जो, रसपरित्याग करेय ।
नीरस भोजन लेयकै, ध्यावै आतम ध्येय ॥८५॥
दूध दही घृत तेल अर, मीठौ लवण इत्यादि ।
रस तजि नीरस अन्न ले, काटै कर्म अनादि ॥८६॥
अथवा मिष्ट कषायलो, खारो खाटो जानि ।
करवो और जु चिरपरो, यह षटरस परवानि ॥८७॥
तजि रस नीरस जो भखै, सो आतमरस पाय ।
देय जलां जलि भ्रमणकों, सूधो शिवपुर जाय ॥८८॥
भव बाकी हूवै जो भया, ता पावै सुरलोक ।
सुरथी नर हूवै मुनिदशा, धारि लहैं शिवथोक ॥८९॥
अथवा सिंगारादि का, नव रस जगत विख्यात ।
तिनमैं शांति सुरस गहै, जा सब रसका सार ॥९०॥

पर रस तजि जिनरस गहै, जाके रस नहिं रोष।
सो पावै समभावकों, दूरि करै सहु दोष ॥९१॥
रसपरित्याग समान नहिं, दूजौ तप जगमांहि।
जहां जीभके स्वाद सहु, त्यागै संशय नाहिं ॥९२॥
अब विविक्त शय्यासना, पंचम तप मुनि वीर।
राग द्वेषके हेतु जे, आसन सज्जा चीर ॥९३॥
तजि मुनिवर निरग्रन्थ ह्वै, वसैं आपमैं धीर।
तन खीणा मन उनमना, जगतरूढ़ गंभीर ॥९४॥
पूजा हमरी होयगी, बहुत भजेंगे लोक।
इह वांछा नहिं चित्तमैं, सहीं हरष अर शोक ॥९५॥
सकल कामनारहित जे, ते साधू शिवमूल।
पापथकी प्रतिकूल ह्वै, भये ब्रह्म अनुकूल ॥९६॥
तेसंसार शरीर अरु, भोगथकी जु उदास।
अभ्यंतर निज बोध धर, तप कुशला जिनदास ॥९७॥
उपशमशीला शांतधी, महासत्व परवीन।
निवसै निर्जन वनविषैं ध्यान लीन तनखीन ॥९८॥
गिरिसिर गुफा मंझार जे, अथवा वसैं मसान।
भूमिमांहिं निरव्याकुला, धीर वीर बहु ज्ञान ॥९९॥
तरुकोटर सूना घरी, नदातीर निवसंत।
कर्म-खपावन उद्यमी, ते जैनी मतिवंत ॥१००॥
कंकरीला धरतीविषैं, विषम भूमिमैं साध।
तिष्टे ध्यावै तत्वकों, आराधन आराधि ॥१॥
जगवासिनकी संगती, ध्यान विघनकौ मूल।

तातैं तजि जड़ संगती, भये ज्ञान अनुकूल ॥२॥
स्त्री पशु-बाल-विमूढ़की, संगति अति दुखदाय।
कायरकी संगति थकी, सूरापन विनसाय ॥ ३ ॥
जे एकांत बसैं सुधा, अनेकांत धरि चित्त।
ते पावैं परमेसुरो, लहि रतनत्रय वित्त ॥ ४ ॥
मुनिकी रीति कही भया, सुनि श्रावककी रीति।
जा विधि पंचम तप करै, धरि जिन वचन प्रतीत ॥ ५ ॥
निजनारीहूतैं विरत, परनारीकौ वीर।
शीलवान शांतिक अती, तप धारैं अति धीर ॥ ६ ॥
परनारीकी सेज अर, आसन चीर इत्यादि।
कबहुं न भींटै भव्य जो, तजे काम रागादि ॥ ७ ॥
निज नारीहुकों तजै जौलग त्याग न होय।
तौ लग कबहुंक सेवही, बहुत राग नहिं कोय ॥ ८ ॥
एक सेज सोवै नहीं, जुदौ जू सोवे जोहि।
जब विविक्तशय्यासना, पावै तप अति सोहि ॥ ९ ॥
करै परोस न दुष्टको तजे दुष्टकौ संग।
विसतीतैं दूरी रहै, पालै व्रत अभंग ॥ १० ॥
जे मिथ्यामत धारका, अलगौ तिनसौं होइ।
जिनधरनीकी संगति, धारै उत्तम सोइ ॥ ११ ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्मकौ, करै न जो विश्वास।
है विश्वासी जैनको, जिनदासनिकौ दास ॥ १२ ॥
सामायक पोषा समैं, गहै इकंत सुथान।
सो विविक्तशय्यासना, भाषै श्री भगवान ॥ १३ ॥

करनों पंचम तप भया, अब छट्ठो तप धार।
कायकलेस जु नाम है कह्यौ सूत्र अनुसार॥ १४॥
अति उपसर्ग उदै भयौ, ताकरि मन न डिगाय।
क्षमावान शातिक महा, मेरु समान रहाय॥ १५॥
देव मनुज तिरजंच कृत, अथवा स्वतै स्वभाव।
उपजौ जो उपसर्ग है, तामै निर्मल भाव॥ १६॥
खेद न आने चित्तमैं, कायकलेस सहेय।
सौ कलेस नहिं पावई, ज्ञान शरीर लहेय॥ १७॥
गिरि सिर ग्रीषममै रहै, शीतकाल जलतीर।
वर्षाऋतु तरुतल वसइ, सो पावै अशरीर॥ १८॥
आतापन जोग जु धरै, कष्ट सहै जु अशेश।
अतिउपवास करै सुधी, सो तप कायकलेश॥ १९॥
कायलेसे सहु मिटे, तन मनके जु कलेश।
महापाप कर्म जु कटै, गुण उपजैंहि अशेश॥ २०॥
मुनि श्रावक दोऊनिको करिवौ कायकलेश।
संकलेसता भाव तजि, इह आज्ञा जगतेश॥ २१॥
वनवासीके अति तपा, घरवासीके 'अल्प।
अपनी शक्ति प्रमाण तप, करिवौ त्याग विकल्प॥ २२॥
ए षट बाहिज तप कहै, अब अभ्यन्तर धारि।
इह भाषैं श्रुतकेवली, जिनबाणी अनुसार॥ २३॥
दोष न करई आप जो, करवावै न कदापि।
दोषतनो अनुमोदना, करै नहीं बुध क्वापि॥ २४॥
मन वच तन करि गुणमई, भिरदोषो निरुपाधि।

आनन्दी आनन्द मय, धारै परम समाधि ॥ २५ ॥
अथवा कदै प्रमादतैं, किंचित लागै दोष ।
तौ अपने औगुण सुधी, तहिं गोपे व्रतपोष ॥ २६ ॥
श्रीगुरु पास प्रकाशई, सरल चित्तकरि धीर ।
स्वामी चाग्यौ दोष मुझ, दंड देहु जगवीर ॥ २७ ॥
तब जो गुरु दंड दे, व्रत तप दान सुयोग ।
सो सब श्रद्धा तैं करैं, पावे पंथ निरोग ॥ २८ ॥
ऐसी मनमैं ना धरे अलप हुतौ यह दोष ।
दियौ दंड गुरुने महा, जाकरि तनकौ सोष ॥ २९ ॥
सबै त्यागि शंका सुधी, सकल विकलपा डारि ।
प्रायश्चित्त करै तपा, गुरु आज्ञा अनुसारि ॥ ३० ॥
बहुरि इच्छै दोषकों, त्यागे मन वच काय ।
देहनत सौ टूक ह्वै, तौहु न दोष उपाय ॥ ३१ ॥
या विधिके निश्चे सहित, वरते ज्ञानी जीव ।
ताके तप ह्वै सातमौ, भाषे त्रिभुवन पीव ॥ ३२ ॥
जो चितवै निजरूपकों, ज्ञानस्वरूप अनूप ।
चेतनता मंडित विमल, सकल लोकको भूप ॥ ३३ ॥
बार बार ही निज लखै, जानें बारम्बार ।
बार बार अनुभव करै, सो ज्ञानी अविकार ॥ ३४ ॥
विकथा विषै कषायतैं, न्यारौ वरतै सन्त ।
ता विरकतके दोष कहु, कैसे उपजै मिन्त ॥ ३५ ॥
निरदोषी बहु गुण धरै, गुणी महाचिद्रूप ।
तासों परचै पाइयौ, सो तपधारि अनूप ॥ ३६ ॥

दोषतनो परिहार जो, कहिये प्रायश्चित्त।
धारै सो निजपुर लहै, गहै सासतो वित्त॥ ३७॥
अब सुनि भाई आठमो, विनय नाम तप धार।
विनय मूल जिनधर्म है, बिनय सु पंच प्रकार॥३८॥
दरसन ज्ञान चरित्र तप, ए चउ उत्तम होइ।
अर इन चउके धारका, उत्तम कहिये सोइ॥ ३९॥
इन पाचनिकौ अति विनय, सो तप विनय प्रधान।
ताके भेद सुनूं भया, जाकरि पद निरवान॥ ४०॥
दरसन कहिये तत्त्वकी, श्रद्धा अति दृढरूप।
ज्ञान जानिवौ तत्त्वकौ, संशय रहित अनूप॥ ४१॥
चारित थिरता तत्त्वमै, अति गलतानी होइ।
तप इच्छाकौ रोखिवौ तन मन दण्ड न सोइ॥४२॥
ए हैं चउ आराधना इन बिन सिद्ध न कोइ।
इनकौ अति आराधिवौ, बिनयरूप तप सोइ॥४३॥
रतनत्रयधारक जना, तप द्वादस विधि धार।
तिनकी अति सेवा करै, तन मन करि अविकार॥४४॥
सो उपचार कह्यौ विनय, ताके बहुत विभेद।
जिनवर जिन प्रतिमा बहुरि, जिनमंदिर हरखेद॥४५॥
जिनवानी जिन तीरथा, मुनि आर्या व्रत धार।
श्रावक और सु श्राविका, समदृष्टी अविकार॥४६॥
इनकौ विनय जु धारिवौ, गुण अनुरागी होइ।
सो तप विनय कहावई, धारै उत्तम सोइ॥ ४७॥
जैसे सेवक लोग अति, सेवै नरपति द्वार।

तैसे चउविधि संघकों, सेवै सो तप धार ॥ ४८ ॥
आप बड़ी जो उत्तमा, तिनकी दासा होइ ।
उनसों समता भावई, विनयरूप तप सोइ ॥ ४९ ॥
व्रत बिन छोटे आपतें, जे सम्यक्त निवास ।
जिनधर्मी जिनदास हैं, तिनहूंसों हित भास ॥ ५० ॥
धर्मदशा जाके भयौ, सो इह विनय धरेय ।
पंच प्रकार विनय करि, भवसागर उतरेय ॥ ५१ ॥
अब मुनि वैयावृत्त जो, नवमो तप सुखदाय ।
जो उपहार करै सुधी, पर दुखहर अधिकाय ॥५२॥
हरै सकल उपसर्ग जो, ज्ञानिनिके तपधार ।
सुधी वृद्ध रोगीनिकौ, करै सदा उपगार ॥ ५३ ॥
महिमादिक चाहै नहीं, निरापेक्ष अणगार ।
वैयावृत्त करै सदा, जिनवाणी अनुसार ॥ ५४ ॥
मुनिको उचित मुनी करै, टहल मुनिनिकी वीर ।
मुनि सेवासम नाहि कोउ, त्रिभुवनमें गंभीर ॥ ५५ ॥
श्रावक भोजन पथ्य दे, औषधि आश्रम आदि ।
करै भक्ति साधुनिकी, इह विधि है जु अनादि ॥५६॥
जो ध्यावै स्वौरूपको, सर्व विकल्पा टारि ।
सम दम भाव हि दृढ़ धरै, वैयावृत सो धारि ॥५७॥
सम कहिये समदृष्टिता, सकल जीवकों तूल्य ।
देखै ज्ञान विचारतैं, इह दृष्टी जु अतुल्य ॥५८॥
दम कहिये मन इन्द्रियां, दमै महा तप धारि ।
चित्त लगावै आपकों, लहै लोककी नारि ॥५९॥

तजै लोक व्यवहारकों धरै अलौकिक वृत्ति।
सो चउगतिकों दे जला, पावै महा निवृत्ति ॥ ६० ॥
सुनों सुबुद्धी कान धरि, दसमो तप स्वाध्याय।
सर्व तपनिमैं है सिरै, भाषैं त्रिभुवनराय ॥ ६१ ॥
नहिं चाहै जु महंतता, करवावे नहिं सेव।
चाह नहीं परभावकी, सेवै श्रीजिनदेव ॥ ६२ ॥
दुष्ट विकलपनिकों भया, जो नासन समरत्थ।
सो पावै स्वाध्यायकों, फल केवल परमत्थ ॥ ६३ ॥
तत्त्व सुनिश्चै कारनें, करैं शुद्ध स्वाध्याय।
सिद्धि करैं निज ऋद्धिकों, सो आतम लवलाय ॥६४॥
आगम अध्यातममई, जिनवरकौ सिद्धान्त।
ताहि भक्तिकरि जो पढ़ैं, सो स्वाध्याय सुकान्त ॥६५॥
केवल आतम अर्थ जो, करैं सूत्र अभ्यास।
अपनी पूजा नहिं चहै, पावै तत्त्व अध्यास ॥६६॥
अपने कर्म कलङ्कके, काटनको श्रुतपाठ।
करैं निरन्तर धर्मधी, नासै कर्म जु आठ ॥६७॥
भेद पञ्च स्वाध्यायके, उपाध्याय भाषैंहिं।
जे धारैं ते ज्ञातधी, आतम रस चाखैंहिं ॥ ६८ ॥
कही वाचना पृच्छना, अनुप्रेक्षा गुरु देव।
आमनाय फुनि धर्मको, उपदेशौ बहुभेव ॥ ६९ ॥
ग्रन्थ बाचवौ वांचना, पृछना पूछनरीति।
बारम्बार बिचारिवौ, अनुप्रेक्षा परतीति ॥ ७० ॥
आमनायकौ जानिवौ, जिनमारगकी रीति।

धर्म कथन करिवौ सदा, कहैं धर्मधर धीर ॥ ७१ ॥
निसप्रेमी भगभावतैं, जो स्वाध्याय करेय ।
सो पावै निजज्ञानकों, भवसागर उतरेय ॥ ७२ ॥
जो सेवैं जिनसूत्रकों, जग अभिलाष धरेय ।
गर्व धरै विद्यातनो, सो चउगति भरमेय ॥ ७३ ॥
हम पंडित बहुश्रुत महा, जानैं सकल जु अर्थ ।
हमहिं न सेवै मूढधी, देखौ बडौ अनर्थ ॥ ७४ ॥
इहै वासना जो धरै, सो नहिं पंडित कोइ ।
आतम भावे जो रमैं, सो बुध पंडित होइ ॥ ७५ ॥
मान बढ़ाइ कारनैं, जे श्रुति सेवैं अन्ध ।
ते नहिं पावैं तत्त्वकों, करै कर्मकौ बन्ध ॥ ७६ ॥
जैनसूत्र मद मान हर, ताकरि गर्वित होय ।
ताहि उपाय न दूसरौ, भ्रमैं जगतमें सोय । ७७ ॥
अमृत विषरूपी भयौ, जाकौ और इलाज ।
कहौ, कहा जु बताइये, भाषैं पंडितराज ॥ ७८ ॥
जो प्रतिकूल विमूढ़धी, साधर्मिनतैं होइ ।
पढ़िवौ गुनिवौ तासके, हालाहल सम जोइ ॥ ७९ ॥
राग द्वेष करि परिणम्यू, करै असूत्र अभ्यास ।
सो पावै नहिं धर्मकों, करै न कर्म विनास ॥ ८० ॥
युद्ध कथा कामादिका, कुकथा चावै मूढ ।
लोक-रिझावन कारणों, सो पद लहै न गूढ़ ॥ ८१ ॥
जो जानै निजरूपकूं, अशुचि देहतैं भिन्न ।
सो निकसे भवकूपतैं, भटकै भाव अभिन्न ॥ ८२ ॥

जानै निज पर भेद जो, आतमज्ञान प्रवीन।
सो स्वामी सब लोककौ, सदा सांतरसलीन ॥ ८३ ॥
लखिवौ आतम भावकौ, सो स्वाध्याय बखानि।
मुनि श्रावक दोऊनिकौ, यह परमारथ जानि ॥ ८४ ॥
अब सुनि ग्यारम तप महा, काया-सग्ग शिवदाय।
कायाकौ उतसर्ग जा, निर्ममता ठहराय ॥ ८५ ॥
त्याग्यां बैठ्यौ देहकों, नहीं देहसों नेह।
लग्यौ रंग निजरूपसों, बरसै आनंद मेह ॥ ८६ ॥
छिदौ भिदौ ले जाहु कोउ, प्रलय होउ निजसंग।
यह काया हमरी नहीं, हम चेतन चिद् अङ्ग ॥ ८७ ॥
इहै भावना उर धरै, जल-मल लिप्त शरीर।
महारोग पीड़ै तऊ, भजै न औषध धीर ॥ ८८ ॥
व्याधितनों न उपायकों, शिवकौ करै उपाय।
इन्द्री-विषय न सेवई, सेवै चेतनराय ॥ ८९ ॥
भयौ विरक्त जु भोगतैं, भोजन सज्जा आदि।
काहूकी परवा नहीं, भेटौ ब्रह्म अनादि ॥ ९० ॥
निजस्वरूप चिंतवन जग्यौ, भग्यौ भोगकौ भाव।
लग्यौ चित चेतनथकी, प्रकट्यौ परम प्रभाव ॥ ९१ ॥
शत्रु मित्र सहु सम गिनै, तजौं राग अरु दोष।
बंध-मोक्षतैं रहित निज,—रूप लख्यौ गुण कोष ॥ ९२ ॥

बेसरी छंद

है विरकत पुरुषनिकों भाई, इह कायोतसर्ग सुख-दाई।
अरु जे तन पोषन है लागा, तेपावैं नहिं भाव विरागा ॥ ९३ ॥

उपकरणादिकमैं मत राखैं, ते नहिं ज्ञान सुधारस चाखैं ।
अग विवहार करौ नहिं औरों, नहिं कायोत्सर्ग तप तौलों ९४
नाम त्यागकौ है उत्सर्गा, कंपैं नहिं जो है उपसर्गा ।
तब कायोत्सर्ग तप पावे, निज चेतनसों चित्त लगावे ।९५।
एक दिवस द्वै दिवसा भाई, पाख मास ऊभौ हि रहाई ।
चउमासी छहमासी वर्षा, रहै जु ऊभौ चितमैं हरषा ॥ ९६ ॥
लहि निजज्ञान भयौ अति पुष्टा, जाहि न घेरे विकल्प दुष्टा
सो कायोत्सर्ग तपधारी, पावै शिवपुर आनन्दकारी ॥ ९७ ॥
मुनिके यह तप पूरण होई, श्रावकके किंचित तप जोई ।
श्रावक हू नहिं देहसनेही, जानों आतम तत्त्व विदेही ॥९८॥
मरणतनों भे तिनके नाहीं, ते कायोत्सर्ग तपमाहीं ।
अब सुनि बारम तप है ध्याना, जो परसाद लहै निजज्ञाना॥
अन्तर एक महूरत काला, सो एकाग्रचित्त व्रत पाला ।
ताकौ नाम ध्यान है भाई, च्यारि भेद भाखें जिनराई ॥१००॥
द्वै प्रशस्त द्वै निंद्य बखानें, श्रुत अनुसार मुनिजन जानें ।
आरति रौद्र अशुभ ए दोऊ, धर्म सुकल अति उत्तम होऊ ।१।
आरति तीव्र कषायें होई, महा तीव्रतैं रौद्र जु सोई ।
मन्द कषायें धर्म सु ध्याना, जाहि न पावै जीव अज्ञाना ॥२॥
धर्मध्यानतैं सुकल सु ध्याना, सुकलध्यानतैं केवलज्ञाना।
रहित कषाय सुकल है सुधा, जा सम और न ध्यान प्रबुधा ३
च्यारि ध्यान ए भाखैं भाई, तिनके सोला भेद कहाई ।
ते तुम सुनहु चित्त धरि मित्रा, त्यागौ आरति रौद्र विचित्रा ४
आरतिके चव भेद जु खोटे, पशुगति दायक औगुण मोटे ।

इष्टवियोग अनिष्टसंजोगा, पीरा चिन्तन होई अजोगा ॥५॥
चौथो बंधनिदान कहावै, जो जीवनिकौ भव भरमावै।
वस्तु मनोहरकौ जु वियोगा, होय तबै धारै शठ सोगा ।६।
इष्ट वियोगारत सो जानो, दुःखतरुवरकौ मूल बखानों।
दूजौ भेद अनिष्ट संजोगा, ताकौ भाव सुनौ भविलोगा ॥७॥
वस्तु अनिष्ट मिलै जब आई, शोच करै तब भोंदू भाई।
भवबनमें भरमै शठमति सो, पाप बांधि पावै दुरगति सो ।८।
रोगनिकरि पीड्या अति शठजन, आरति धार जो अपने मन
सो पीराचितवन है तीजौ, आरतध्यान सदा तजि दीजौ ।६।
चौथो आरति त्यागौ भाई, बंधनिदान महा दुखदाई।
जपतपव्रत करि चाहैं भोगा, ते जगमाहिं महाशठ लोगा ।१०।
ए चारो आरति दुखदाई, भवकारण भाषैं जिनराई।
रौद्रध्यानके चारि विभेदा, अब सुनि जे दायक अतिखेदा ११
हिंसाकरि आनन्द जु मानै, हिंसानंदी धर्म न जानै।
मृषावाद करि धरै अनंदा, मृषानन्द सो जियकौ फन्दा ।१२।
चोरीतैं आनंद उपजावै, सो अघ चौर्यानन्द कहावै।
परिग्रह बढ़ें होय आनन्दा, सो जानों जु परिग्रहनन्दा ।१३।
ए चउ भेद हरें सुख साता, दुरमतिरूप उग्र दुखदाता।
पर विभूतिकी घटती चाहैं, अपनी सापति देखि उमाहैं ।१४।
रौद्रध्यानके लक्षण एई, त्यागैं धन्नि धन्नि हैं तेई।
आरत्ति रुद्र ध्यान ए खोटा, इनकरि उपजै पाप जु मोटा १५
दुखके मूल सुखनिके खोवा, ए पापी हैं जगत डबोवा।
चउ आरतिके पाये भाई, तिर्यंगतिकारण दुखदाई ॥१६॥

रौद्रध्यानके चारि ए पाये, अधोलोकके दायक गाये ।
अशुभध्यान ये दोय विरूपा, लगे जीवके विकलपरूपा ॥१७॥
नरक निगोद प्रदायक तेई, बसैं मिथ्यात धरामैं एई ।
कबहुं कदाचित अणुव्रत ताई, काहूके रौद्र जु उपजाई ॥१८॥
महाव्रतलों आरतध्याना, कबहुंक छट्ठे परमित थाना ।
काहूके उपजैं त्रय पाये, सप्तमठाणे सबं नसाये ॥१९॥
भोगारति उपजै नहिं भाई, जो उपजै तौ मुनि न कहाई ।
अब सुनी धर्मध्यानकी बातें जे सहु पाप पंथकों घातें ॥२०॥
धर्म जु वस्तु स्वभाव कहावै, पण्डितजन तासों लव लावैं
क्षमा आदि दशलक्षण धर्मा, जीवदया बिनु कटइ न कर्मा २१
इत्यादिक जिन भाषित जेई, धारैं धर्म धीर हैं तेई ।
धर्मविषैं एकाग्र सुचित्ता, विषैभोगसे अतिहि विरत्ता ॥२२॥
जे वैराग्यपरायण ज्ञानी, धर्मध्यानके होंहि सु ध्यानी ।
जो विशुद्धभावनिमैं लागा, जिनतैं रागदोष सह भागा ॥२३॥
एक अवस्था अंतर बाहिर, निरविकल्प निज निधिके माहिर
ध्यावै आत्मभाव सुधिरा, ह्वै एकाग्रमना बर वीरा ॥२४॥
जे निजरूपा हैं समभावा, ममत विलीता अग निरदावा ।
इन्द्री जीति भये जु जितिन्द्री, तिनकों ध्यानी कहैं अतिन्द्री
चितवन्ता चेतन गुण धामा, ध्यानहिं लीना आतमरामा ।
निरमोही निरद्वन्द सदा ही, चितमैं कालिम नाहिं कदाही २६
जे हि अनुभवैं निज चितधनकों, रोकैं मनकों सोकैं मनकों ।
आनन्दी निज ज्ञानस्वरूपा, तिनके धर्म सुध्यान निरूपा ।२७।
मैत्री मुदिता करुणा भाई, अर मध्यस्थ महासुखदाई ।

एहि भावना भावै जोई, धर्मध्यानको ध्याता सोई ॥२८॥
सर्वजीवसों मैत्रीभावा, गुणी देखि चितमें हरषावा।
दुखी देखि करुणा उर आनैं, लखि विपरीत राग नहिं ठानै
द्वेष जु नाहिं धरै जु महन्ता, है मध्यस्थ महा गुणवन्ता।
बहुरि धर्मके चारि जु पाया, ते समयकदृष्टिनिकों भाया ॥३०
आज्ञाविचय कहावै जोई, श्रीजिनवरने भाष्यौ सोई।
ताका दृढ़ परतीति करै जो, संसय विभ्रम मोह हरै जो ३१
कर्म नाशको उद्यम ठानै, रागद्वेषकी परणति भानै।
सौ अपायविचयो है दूजो, तिरै जगतथी धारै तू जौ ॥३२॥
करै उपाय शुद्ध भावनिकौ, अर निरवाणपुरि पावनकौ।
तीजौ नाम विपाकविचै है, भवभावनितें भिन्न रहै हैं ॥३३॥
शुभके उदै संपदा आवै, अशुभ उदै आपद बहु पावै।
दोऊ जानै तुल्य सदाही, हर्ष-विषाद धरै न कदा ही ॥३४॥
फुनि संठाणविचय है चौथौ, सर्व जगतकों जानैं थोथौ।
तीन लोकको जानि सरूपा, जिनमारग अनुसार अनूपा ३५
सबकौ भूषण चेतनराया, चेतनसों नहिं दूजौ माया।
सर्व लोकसूं छांडि जु प्रीती, चेतनकी धारै परतीती ॥३६॥
चेतन भावनिमैं लौ लावै, अपनों रूप आपमैं ध्यावै।
ए हैं धरमध्यानके भेदा, सुकल प्रदायक पाप उछेदा ॥३७॥
चौथे गुणठाणों होइ धर्मा, संपूरण गुण ठाणों परमा।
धर्मध्यानके चउ गुणठाणा, ते देवाधिदेवने आणा ॥३८॥
अहमिन्द्रादिक पद फल ताको, वरणे जाहिं न अति गुण जाको
कारण सुकल ध्यानको एहो, धर्मध्यानतैं सुकल जु लेही ॥३९॥

मुनि श्रावक दोऊके गाया, धर्मध्यान सो नहीं उपाया ।
मुनिको पूरणरूप प्रवानों, श्रावकके कछु नून बखानों ॥४०॥
मुनिके अति ही निश्चलताई श्रावकके किंचित थिरताई ।
परिग्रह चंचलताको मूला, जातैं धर्म न होय सथूला ॥४१॥
पैतृष्णा छाड़ी बहुतेरी, करि मरजादा परिग्रहकेरी ।
तातैं धर्मध्यानके पात्रा, श्रावक हू जाणों गुनगात्रा ॥४२॥
धर्मध्यानके च्यारि स्वरूपा और हु श्रीगुरु कहे अनूपा ।
इक पिंडस्थ पदस्थ द्वितीया, रूपस्था तीजौ गनि लीया ॥४३॥
रूपातीत चतुर्थम भेदा, इह धर्म को पाप उछेदा ।
इनके भेद सुनौ मन लाये, जाकरि सुकलध्यानकूं पाये ॥४४
पिंडमाहिं सब लोक विभूती, चितवै ज्ञानी निज अनुभूती ।
पिंडलोकको राजा चेतन, जाहि स्पर्श सकैन अचेतन ॥४५॥
ताकौध्यान धरै जो ध्यानी, सो होवै केवल निज ज्ञानी ।
बहुरि पदस्थ ध्यान बुध धारै, जिनभाषित पद मन्त्र विचारै
पंच परमगुरुमंत्र अनादि, ध्यावै धीर त्याग क्रोधादी ।
नमोकारके अक्षर भाई, पैंतीसौ पूरण सुखदाई ॥४७॥
षोड़स अक्षर मंत्र महंता, पंच परमगुरु नाम कहन्ता ।
मंत्र षडाक्षर अ र ह त सिद्धा, अ सि आ उ सा पंच प्रबुद्धा
नमोकारके पैंतिष अक्षर, प्रसिद्ध छे अरु षोड़स अक्षर ।
अरहंत सिद्ध आयरि उवझाया, साहू जपैते अंक गिनाया ४६
चउ अक्षर अ र हं त जपो जू, सिद्ध नाम उरमाहिं थपो जू
द्वै अक्षर भूलो मति भाई, सिद्ध-सिद्ध यह जाप कराई ॥५०॥
मंत्र इकाक्षर है ओंकारा, ब्रह्मबीज इह प्रणव अपारा ।

पंच परमपद या अक्षरमै, याहि ध्याय जगमै नहिं भरमैं ५१
शुक्लरूप अति उज्जल सजला, ध्यावै प्रणवातैं हैंविमला।
सोऽहं सोऽहं अजपाजापा, हरै संतके सब सन्तापा ॥५२॥
इह सुर सबही प्राणीगणके, होवै श्वास उश्वास सबनिके।
पै नहिं याकौ भेद जु पावै, तातैं भोंदू भव भरमावै ॥५३।
जो यह नाद सुनैं वरवीरा, पावै शुक्लध्यान गुणधीरा।
उज्जलरूप दाय ए चंका, ध्यावै सो नास अघपंका। ५४।
जिनवर सो नहिं देव जु कोई, अजपा सो नहिं जाप सु होई
मंत्र अनेक जिनागम गाये, ते ध्यानी पुरषनिने ध्याये ॥५५॥
सबमै पच परम गुरू नामा, पंच इष्ट बिन मन्त्र निकामा।
मंत्राक्षरमाला जो ध्यावें, नाम पदस्थ ध्यान सो पावै ॥५६॥
अब सुनि यीजौ भेद सु भाई, है रूपस्थ महासुखदाई।
कतृ म और अकतृ म मूरत, जिनवरको ध्यावै शुभ सूरत ५७।
जिनवरको साकार स्वरूपा, तेरम गुणठाणे जु अनूपा।
अतिसै प्रानिहार्य धर स्वामी, धरै अनत चतुष्टय नामी ५८
समवसरण शोभित जिमदेवा, ताहि चितारै उर धरि सेवा।
फुनि नजि रूप रंग गुणवाना, ध्यावै चौथो भेद सुजाना ५९
रूपातीत समान न कोई, धर्म ध्यानकौ भेद जु होई।
ध्यावै सिद्धरूप अतिशुद्धा, निराकार निर्लेप प्रबुद्धा ॥६०॥
पुरुषाकार अरूप गुसाईं, निरविकार निरदूषन साईं।
वसु गुण आदि अनंत गुणाकर, अवगुणरहित अनंत प्रभाधर
लोकशिखर परमेसुर राजै, केवलरूप अनूप विराजै।
जिनको उर अन्तर जे ध्यावै, रूपातीत ध्यानते पावै ॥६२॥

सिद्ध समान आपकों देखैं, निश्चयनय कछु भेद न पेखैं।
विवहारे प्रभुके हम दासा, निश्चय सुद्ध बुद्ध अविनाशा ॥६३॥
ए ध्यारू ध्यावैं जो धर्मा, तेहि पिछानैं श्रुतिको मर्मा।
धर्म ध्यान चहुंतगतिमैं होई, सम्यक विन पावे नहिं कोई ॥६४॥
छट्ठम सत्तम मुनिके ठाणा, पंचम ठाणें श्रावक जाणा।
चौथे अव्रत सम्यकज्ञानी, तेऊ धर्मध्यानके ध्यानी ॥६५॥
चौथेसों ते सप्तमताई, धर्मध्यानको कहैं गुसाई।
धर्मध्यान परभाव सुज्ञानी, नासै दस प्रकृती निजध्यानी ॥६६॥
प्रथम चौकरी तीन मिथ्याना, सुर नारक अर आयु विख्याता।
अष्टमसों चौदमलों सुकली,सुकल समान न कोई विमली ।६७
शुकलध्यान मुनिराज हि ध्यावैं, शुकलकरी केवलपद पावैं।
शुकल नसावै प्रकृति समस्ता, करै शुकल रागादि विध्वस्ता ।६८।
जौ निज आतमसो लव लावै, शुकल तिनोंके श्रीगुरु गावैं।
शुकलध्यानके चारि जु पाये, ते सर्वज्ञदेवने गाये ॥६९॥
द्वै सुकला द्वै सुकल जु पर्मा, जानै श्रीजिनवर सहु मर्मा।
प्रथम पृथक वितर्क विचारा, पृथक नाम है भिन्न प्रचारा ॥७०॥
भिन्न भिन्न निज भाव विचारै, गुण पर्याय स्वभाव निहारै।
नाम वितर्क सूत्रको होई, श्रुति अनुसार लखै निज सोई ।७१॥
भाव थकी भावांतर भावै, पहलो शुकल नामसो पावै।
दूजो है एकत्व वितर्का, अवीचार अगणित दुति अर्का ॥७२॥
भयो एकतामैं लवलीना, एकी भाव प्रकट जिन कीना।
श्रुत अनुसार भयौ अविचारी.भेदभाव परणति सब टारी ।७३।
तीजौ सूक्षम किरियाधारी, सूक्षम जोग करै अविकारी।

चौथो जोगरहित निहक्रिरिया, जाहि ध्याय साध भवतिरिया ७४।
अष्टम ठाणों पहलो पायो, बारमठाणें दूजो गायो।
तीजो तेरमठाणों जानो, चौथो चौदमठाणों मानों ॥७५॥
इनके भेद सुनों धरि भाव, जिनकर नासै सकल विभाव।
होंहि पवित्रभाव अधिकाई, जे अबतक हूवे नहिं भाई ॥७६॥
भाव अनंत ज्ञान सुख आदी, तिनको धारक वस्तु अनादी।
लिये अनंता शक्ति महंती, धरें विभूति अनंतानंती ॥७७॥
अपनी आप माहिं अनुभूती, अति अनंतता अतुल प्रभूती।
अपने भाव तेहि निज अर्था, और सबै रागादि अनर्था ॥७८॥
अपनो अर्थ आपमें जाने, आतम सत्ता आप पिछाने।
इक गुणतैं दूजो गुण जावै, ज्ञानथकी आनन्द बढ़ावै ॥७९॥
गुण अनतमैं लीलाधारी, सो पृथक्त्ववितर्कविचारी।
अर्थ थकी अर्थान्तर जावै, निज गुण सत्ता माहिं रहावै ॥८०॥
योगथकी योगान्तर गमना, राग दोष मोहादिक वमना।
शब्दथकी शब्दातर सोई, ध्यावै शब्दरहित ह्वै सोई ॥८१॥
व्यंजन नाम शुद्ध परजाया, जाकौ नाश न कबहुं बताया।
वस्तुशक्ति गुणशक्ति अनन्ती, तेई पर्यय जानि महन्ती ॥८२॥
व्यंजनतैं व्यंजन परि आवै, निज स्वभाव तजि कितहुं न जावै।
श्रुति अनुसार लखै निजरूपा, चिनमूरति चैतन्य स्वरूपा ।८३।
जैनसूत्रमैं भाव श्रुती जो, प्रगटै अनुभव ज्ञानमती जो।
सो पृथक्त्ववितर्क विचारा, ध्यावै साधू ब्रह्म विहारा ॥८४॥

दोहा—जानि पृथक्त अनंतता, नाम वितर्क सिद्धंत।
है विचार अविचार निज, इह जानों विरतन्त ॥८५॥

बेसरी छन्द ।

लेश्या सुकल भाव अति शुद्धा, मन वच काय सबै जु निरुद्धा ।
यामैं एक और है भेदा, सो तुम धारहु टारहु खेदा ॥८६॥
उपसमश्रेणी क्षपक जु श्रेणी, तिनमैं क्षायक मुक्ति निसेणी ।
पहलो सुक्ल जु दोऊ धारै, दूजौ क्षपकविना न निहारै ॥८७॥
उपशम धारै ग्यारम ठाणा, परस्परै उतरै गुणठाणा ।
जो कदाचि भवहूतें जाई, तौ अहमिन्द्रलोकको जाई ॥८८॥
नर ह्वै करि धारै फिर धर्मा, चढ़ै क्षपकश्रेणी जु अधर्मा ।
क्षपक श्रेणिधर धीर मुनिन्द्रा, होवे केवलरूपजिनिन्दा ॥८९॥
बारम ठाणों दूजौ सुकला, प्रकटै जा सम और न विमला ।
दूवै मैं क्षपकश्रेणि अधिकाई, कहीं आय नहिंक्षपक बढ़ाई ।९०।
अष्टम ठाणें प्रगटे श्रेणी, सप्तमलों श्रेणी नहिं लेणी ।
क्षपक श्रेणिधर सुकल निवासा, प्रकृति छतीस नवें गुणनासा ९१
दशमें सुक्षम लोभ छिपावै, दशमाथी बारमको जावै ।
ग्यारमको पैंडो नहिं लेवै, दूजौ सुकलध्यान सुख वेवै ॥९२॥
साधकताकी हद बताई, बारमठाण महा सुखदाई ।
जहां षोड़सा प्रकृति खिपावै, शुद्ध एकतामें लव लावै ॥९३॥

सोरठा—मार्यौ मोह पिशाच, पहले पायेसे श्रीमुनि । राच्यौ जगतकौ नाच, पायो ध्यायौ दूसरौ ॥९४॥ है एकत्ववितर्क, अवीचार दूजौ महा । कोटि अनंता अर्क, जाको सौ तेज न लहै ॥९५॥ ज्ञानावरणीकर्म, दर्शनावरणी हू हते । रह्यौ नाहिं कछु मर्म, अन्तराय अन्त जु भयौ ॥ ९६ ॥ निरविकल्प रस माहिं, लीन भयौ मुनिराज सो । जहां भेद कछु नाहिं निजगुण पर्ययभावतैं ॥९७॥

द्रव्य सूत्र परताप, भावसूत्र दरस्यौ तहां । गयो सकल सन्ताप, पाप पुण्य दोऊ मिटे ॥६८॥ एक भावमैं भाव, लखै अनन्तानन्त ही । भागे सकल विभाव, प्रगटे ज्ञानादिक गुणा ॥६६॥ अपनों रूप निहार, केवलके सन्मुख भयौ । कर्म गये सब हारि, लरि न सकै जासें न कोऊ ॥१००॥ एकहि अर्थे लीन, एकहि शब्द माहिं जो । एकहि योग प्रवीण, एकहिं व्यजन धारियौ ॥१॥ एकत्व नाम अभेद, नाम वितर्क सिघन्तकौ । निरविचार निरवेद, दूजौ पायौ इह कह्यौ ॥ २ ॥ जहां विचार न कोय, भागे विकलप जाल महु । क्षीणकषायी होइ, ध्यानारूढ भयौ मुनी ॥ ३ ॥ दूजौ पायो येह, गायौ गुरु आज्ञा थकी । करै कर्मकौ छेह, अब सुनि तीजौ शुकल तू ॥ ४ ॥ सुक्षम किरिया नाम, प्रगटै तेरम ठाण जो । जो निज केवल धाम, श्रुत-ज्ञानीके है परे ॥ ५ ॥ लोकालोक समस्त, भासै केवल बोध मैं । केवल सा न प्रशस्त, सर्व लोकमें और कोउ ॥ ६ ॥ जे अघातिया नाम, गोत्र वेदनी आयु है । तिनकौ नाशै राम, परम शुकल केवल थकी ॥ ७ ॥ पच्यासी पच्यासी प्रकृती जु, जिनके ठाणो तेरमें । जरी जेवरी सो जु, तिनकू नाशे सो प्रभू ॥ ८ ॥ सुक्षमक्रिया प्रवृत्ति, ध्यावै तीजौ शुकल सो । वादरजोग निवृत्ति, कायजोग सुक्षम रहै ॥ ६ ॥ करै जु सूक्षम जोग, तेरम गुणके छेहु रै । पावै लवै अजोग, चौदम गुणठाणे प्रभू ॥ १० ॥ तहा सु चौथौ ध्यान, है जु समुच्छिन्नक्रिया । ताकरि श्रीभगवान, बेहत्तरि तेरा हतै ॥११॥ गई प्रकृति समस्त, सौ ऊपरि अडताल जे । भये भाव जड़ अस्त, चेतन गुण प्रगटे सवै ॥ १२ ॥ करनी सकल उठाय, कृत्यकृत्य हूवौ प्रभू । सो चौथो शिवदाय, परम शुकल जानो भया ॥ १४ ॥ पंच

लघुअक्षर काल, चौदम ठाणे थिति करै । रहित जगत जंजाल, जगत शिखर राजै सदा । बहुरि न आवै सोय, लोकशिखामणि जगततैं । त्रिभुवनको प्रभु होय, निराकार निर्मल महा ॥ १५ ॥ सबकी करनी सोइ, जानै अंतरगत प्रभु । सर्व व्यापको होइ, साखीभूत अव्यापको ॥ १६ ॥ ध्यान समान न कोई, ध्यान ज्ञानको मित्र है । सौनिज ध्यानी होइ, ताकों मेरी बंदना ॥ १७ ॥ धर्ममूल ए दोय, ध्यान प्रशंसा योग्य हैं । आरति रुद्र न होय, सो उपाय करि जीव तू ॥१८॥ धर्म अगनिकौ दीप, शुकल रतनकौ दीप है, निजगुण आप समीप तिनको ध्यावौ लोक तजि ॥ १९ ॥ ध्यान तनू विस्तार, कहि न सकै गणधर मुनी । कैसे पावैं पार, हमसे अलपमती भया ॥ २० ॥ तप जप ध्यान निमित्त, ध्यान समान न दूसरो । ध्यान धरौ निज चित्त, जाकर भवसागर तिरौ ॥ २१ ॥ तपकुं हमरी ढोक, जामैं ध्यान जु पाइये । मेटै जगकौ शोक करै कर्मकी निर्जरा ॥ २२ ॥ अनशन आदि पवित्र, ध्यान लगै तप गाइया । बारा भेद विचित्र, सुनों अबै समभाव जो ॥ २३ ॥

(इति द्वादश तप निरूपणम् ।)

सम भाव वर्णन

(छप्पय छंद)

राग दोष अर मोह, एहि रोकै समभावैं ।
जिनकरि जगके जीव, नाहिं शिवथानक पावैं ।
तेरा प्रकृति जु राग, दोषकी बारा जानों ।
मोहतनी हैं तीन, अट्ठाईस बखानों ॥

एक मोहके भेद, दो दर्शन चारित्र ए
दर्शन मोह मिथ्यात भव, जहा न सम्यक सोहए ॥ २४ ॥
राग द्वेष ए दोय, जानि चारित्र जु मोहा।
इनकरि तप नहीं अत, ए पापी पर द्रोहा ॥
इनकी प्रकृति पचीस, तेहि तजि आतमरामा।
छांडौ तीन मिथ्यात, यही दोषनिके धामा ॥
स्वपर विवेक विचार बिना, धर्म अधर्म न जो लखै।
सो मिथ्यात अनादि प्रथम, ताहि त्यागि निजरस चखै ॥२५॥
दूजौ मिश्र मिथ्यात, होय तीजे गुण ठाणें।
जहां न एक स्वभाव, शुद्ध आतम नहिं जाणे ॥
सत्य असत्य प्रतीति होय दुविधामय भावैं।
ताहि त्यागि गुणखानि, शुद्ध निजभाव लखावैं ॥
तीजे समय प्रकृति मिथ्यात, सकफितमै उद्वेग कर (?)।
भलौ दोयत तीसरौ; तौपन चंचलभाव धर ॥ २६ ॥

दोहा—कहे तीन मिथ्यात ए, दर्शन मोह विकार। अब चारित्र जु मोहकौ, भेद सुनौ निरधार ॥२७॥ कही कषाय जु षोड़सी, नो-कषाय नव भेलि। ए पचीसों जानिये, राग दोषकी केलि ॥२८॥ चउ माया चउ लोभ अर, हासि रती त्रय वेद। ए तेरा हैं रागकी, देहि प्रकृति अति खेद ॥२९॥ च्यारि क्रोध अर मान चउ, अरति शोक भय जानि। दुरगंधा ये द्वादशा, प्रकृति दोषकी मानि ॥३०॥ लगीं अनादि जु कालकी, भरमावैं जु अनन्त। तिनसैं भव्यनिके मथा, ह्वै न अभविके अन्त ॥३१॥ रोके सम्यक-दृष्टिकों, रोके सकल विभाव। ढोके मिथ्यादृष्टिकों, नहिं आवैं

समभाव ॥२२॥ अनंतानु बन्धी इहै, प्रथम चौकरी जानि। त्यागै तान मिथ्यातजुत, सो समदृष्टी मानि ॥२३॥

(छप्पय छन्द)

समकित बिनु नहिं होत, शांतिरूपी समभावा।
चौथे गुण ठाणों जु कछुक, समभाव जनावा।
द्वितीय चौकरी बहुरि, सोहु असंजम भाई।
नाम अप्रत्याख्यान, जा उदैं व्रत न पाई॥
होय चौकरी तीन मिथ्या, त्याग होय श्रावकव्रती।
प्रगटे गुणठाण जु पंचमें, पापनिकी परणति हती ॥२४॥
बढ़ैं तहां समभाव, होय रागादिक ऊना।
असतैं गनि ऊंच, सावद्यनितैं ऊना॥
तृतीय चौकरी जानि, नाम है प्रत्याख्यानी।
रोके मुनिव्रत पद, ठाण छट्ठो शुभध्यानी॥
तीन चौकरी तीन मिथ्या छांडि साधु हूवे संजमी।
वृद्धि होय समभावई, मन इन्द्री सबही दमी ॥२५॥

दोहा - चौथी संजुलना सही, रोके केवलज्ञान।
जाके तीव्र उदैयकी, होय न निश्चल ध्यान ॥२६॥

(छप्पय छन्द)

चौथी चौकरि टरै, नाम संजुलन जावे ही।
नो-कषाय नव भेद, नाशि जावे जु सवै ही॥
यथाख्यात चारित्र, उपजै बारम ठाणों।
पूरण जब समभाव, होय जिनसूत्र प्रमाणों॥
क्रोध मान छल लोभ आदि एक एक चउभेद ह ॥२७॥

दोहा—अनंतानुबंधी प्रथम, द्वितीय अप्रत्याख्यान। तीजी प्रत्याख्यान है, चउथी है संज्वलान ॥३८॥ कही चौकरी चार ए, चारो गतिकी मूल। च्यारितनी सोला भई भेद मोक्ष प्रतिकूल ॥३९॥ हास्य अरति रति शोक भय, दुरगंधा दुखदाय। नो-कषाय ए नव कहो, पंचवीस समुदाय ॥४०॥ राग दोषकी प्रकृत ए कहौ पचीस प्रमान। तीन मिथ्यात समेत ए, अट्ठाईस बखान ॥४१॥ जावं जबै सब ही भया, तब पूरण समभाव। यथाख्यातचारित्रह्वै, क्षीणकषाय प्रभाव ॥४२॥ मुनिके जातैं अलप है, छटे सातमे ठाण। पन्द्रा प्रकृति अभावनें, ता माफिक समजाण ॥४३॥ श्रावकके यातैं अलप, पंचम ठाणों जाण। ग्यारा प्रकृति गया थकीं, ता माफिक परवाण ॥४४॥ श्रावकके अणुवृत्त है, इह जानो निरधार। मुनिके पञ्चमहाव्रता, समिति गुपति अविकार ॥४५॥ श्रावकके चौथे अलप, चौथौ अव्रत ठाण। तहा सात प्रकृती गई, ता माफिक ही जाण ॥४६॥ गुणठाणा समभावके, ह्वै ग्यारा तहकीक। चौथे सूं ले चौदमा, तक नहिं बात अलीक ॥४७॥ चौथे जघनि जु जानिये, मध्य पंचमे ठाण। छट्ठासूं दसमा लगै, बढ़तो बढतो जाण ॥४८॥ बारम तेरम चौदवें, है पूरण समभाव। जिन सासनको सार इह, भवसागरकी नाव ॥४९॥

छप्पय—छट्टमसोले … …जुगल मुनीके जाणा।
तिनकौ सुनहु विचार, जैनशासन परवाणा॥
छट्टम सप्तम ठाण, प्रकृति पंद्रा जब त्यागी।
तीन मिथ्यात विख्यात, चौकरी इक तीन अभागी॥
तब उपजै समभावई, श्रावकके अधिकौ महा

पै तथापि तेरा रही, तातैं पूरण नहिं कहा ॥५०॥
रही चौकरी एक, और गनि नो-कषाय नव ।
तिनको नाश करेय, सो न पावै कोई भव ॥
छट्टे तीव्र जु उदै, सातवें मंद जु इनकौं ।
इनमें षट हास्यादि, आठवें अन्त जु तिनकौ ॥
क्रोध मान अर कपट नो, वेद तीनही नहिं या ।
चौथे चौकरि लोभसू—क्षण दश ठाण विनाशिया ॥५१॥

छन्द चाल—एकादशमा द्वादशमा,फुनि तेरम अर चौदशमा ।
समभावतने गुणथाना, ए च्यारि कहे भगवाना ॥५२॥
ग्यारम है पतन स्वाभावा, डिगि जाय तहा समभावा ।
बारहमैं परम पुनीता, जासम नहिं कोइ अजीता ॥५३॥
तेरम चौदम गुणठाणा, परमातमरूप बखाना ।
समभाव तहा है पूरा, कीये रागादिक चूरा ॥५४॥
नहिं यथाख्यात सौ कोई, समभाव सरूपी सोई ।
इह सम उतपत्ति बताई, रागादिक नाश कराई ॥५५॥
अब सुनि सम लक्खण संता,जा विधि भाषैं भगवंता ।
जीवौ मरिवौ सम जानै, अरि मित्र समान बखानैं ॥५६॥
सुख दुख अर पुण्य जु पापा, जानै सम ज्ञानप्रतापा ।
सब जीव समान विचारै, अपनेसे सर्व निहारै ॥५७॥
चिंतामणि पाहन तुल्या, जिनके सम भाव अतुल्या ।
सुरगति अर नर्क समाना,सब राव रंक सम जाना ॥५८॥
जिनके घरमें नहिं ममता,उपजी सुखसागर समता ।
बन नगर समान पिछानैं, सेवक साहिब सम जानै ॥५९॥

समसान महल सम भावे, जिनके न विषमता आवे ।
है लाभ अलाभ समाना, अपमान मान सम जाना ॥६०॥
गिरि ग्रीष्म समान जिनूं के, सुर कीट समान तिनूं के ।
सुरतरु विषतरु सम दोऊ, चन्दन कर्दम सम होऊ ॥६१॥
गुरु शिष्य न भेद विचारैं, समता परिपूरण धारैं ।
जानैं सम सिंह सियाळा, जिनके समभाव विशाळा ॥६२॥
संपति विपता द्वै सरिखी, लघुता गुरुतासम परखी ।
कंचन लोहा सम जाके, रंच न है विभ्रम ताके ॥६३॥
रति अरति हानि अर वृद्धी, रज सम जानैं सब ऋद्धी ।
खर कुंजर तुल्य पिछानैं, अहि फूलमाल सम जानैं ॥६४॥
नारी नागिन सम देखैं, गृह कारागृह सम पेखैं ।
सम जानैं इष्ट अनिष्टा, सम मानैं अवलि वलिष्टा ॥६५॥
जे भोग रोग सम जानैं, सब हर्ष राग सम मानैं ।
रस नीरस रंग कुरंगा, सुसबद कुसबद सम अंगा ॥६६॥
शीतल अर उष्ण समाना, दुरगंध सुगंध प्रमाना ।
नहिं रूप कुरूप जु भेदा, जिनके समभाव निवेदा ॥६७॥
धनी अर निरधन दोई, कछु भेदभाव नहिं होई ।
चक्राणी अर इन्द्राणी, अति दान नारि सम जाणी ॥६८॥
इन्द्र नागेन्द्र नरेन्द्रा, फुनि सर्वोत्तम अहमिन्द्रा ।
सूक्षम जीवनि सम देखैं, कछु भेद भाव नहिं पेखैं ॥६९॥
थुति निंदा तुल्य गिनैं जो, पापनिके पुंज हनैं जो ।
कृमि कुम्भकर्ण सम तुल्या, पायौ समभाव अतुल्या ॥७०॥
सेवा उपसर्ग समाना, बैरी बांधव सम माना ।

जिनके हिय मृदु सरीखा, सोखो सद्गुरुकी सीखा ॥७१॥
वंदे निंदे सो सरिखौ, समभावन तन जिन परिखौ ।
समतारस पूरण प्रगट्यौ, मिथ्यात महाभ्रम विघट्यौ ॥७२॥
तिनकी छवि शांत सुमुद्रा, रौद्र जु त्यागी अति क्षुद्रा ।
चीता मृगवर्ग न मारे, अति प्रीति परस्पर धारे ॥७३॥
गरुड़ा नहिं नाग विनासै, नागा नहिं दादुर नासै ।
उन्दुर मारै न बिडाला, पंखिनसौं प्रीति विशाला ॥७४॥
तिर विद्याधर नर कोई सुर असुर न बाधक होई ।
काहूकूं राव न दंडे, दुरजन दुरजनता छंडे ॥७५॥
काहूके चोर न पैसे, चोरी होवे कहु कैसे ।
लखि समता धारक मुनिकौं, त्यागै पापी पापनिकौं ॥७६॥
डाकिनके दोर न चालैं, हिंसक हिंसा सब टालै ।
भूता नहिं लागन पावै, राक्षस व्यंतर भजि जावै ॥७७॥
मंतर न चलैं जु किसीके ये हैं परभाव रिषीके ।
कोहू काहु नहिं मारै, सब जीव मित्रता धारै ॥७८॥
हरिनी मृगपतिके छावा, देखै निज सुत समभावा ।
बाघनिकूं गाय चुखावै, मार्जारी हंस खिलावै ॥७९॥
स्याली अर मोढ़ा इकठे, नाहर बकरा है बैठे ।
काहूंकौ जार न चालै, समभाव दुःखनिकौं टालै ॥८०॥
इह ब्रह्म सुविद्यारूपा, निरदोष विराग अनूपा ।
अति शांतिभावकौ मूला, समसौं नहिं शिव अनुकूला ॥८१॥
नहिं समता पर है कोऊ, सब श्रुतिकौ सार जु होऊ ।
जो ममताकौ परित्यागा, सो कहिये सम बड़भागा ॥८२॥

मन इंद्रीकौ जु निरोधा, सो दम कहिये प्रतिबोधा ।
समतें क्रोधादि नशाया, दमतें भोगादि भगाया ॥८३॥
सम दम निवारण प्रदाया, काहे धारौं नहिं भाया ।
सब जैन सूत्र समरूपा, समरूप जिनेश्वर भूपा ॥८४॥
समताधर चउविधि संघा, समभाव भवोदधि लंघा ।
पूरण सम प्रभुके पइये, तिनतें लघु मुनिके लइये ।८५॥
तिनतैं श्रावकके नूना सम करैं कर्मगण चूना ।
श्रावकतै चौथे ठाणे, कछुइक घट तो परमाणे ॥८६॥
सम्यक विन समता नाहीं, सम नाहिं मिथ्यामत माहीं ।
ममता है मोह सरूपा, समता है ज्ञान प्ररूपा ॥८७॥
सब छोडि विषमता भाई, ध्यावौ समता शिवदाई ।
समकी महिमा मुनि गावै, समको सुरपति शिर नावै ॥८८॥
समसौं नहिं दूजौ जगमे, इह सम केवल जिनमगमें ।
सम अर्थ सकल तप वृत्ता, सम है मारग निरवृत्ता ॥८९॥
जो प्राणी समरभ भावै, सो जनम मरण नहिं पावै ।
यम नियमादिक जे जोगा, सबमैं समभाव अलोगा ॥९०॥
समकौ जस कहत न आवै, जो सहस जीभकरि गावै ।
अनुभव अमृतरस चाखै, सोई समता दिढ राखै ॥९१॥

इति समभाव निरूपण ।

सम्यक वर्णन

सवैया ३१ सा।

अष्ट मूलगुण कहे बारह वरत कहे कहे तप द्वादश जु समभाव साधका। सम सान कोऊ और सर्वकौ जु सिरमौर, याही करि पावै ठौर आतम अराधका। विषमता त्यागि अर समताके पंथ लागि, छाड़ौ सब पाप जेहि धर्मके विराधका। ग्यारै पड़िमा जु भेद दोषनिकौ करै छेद, धारै नर धीर धरि सकै नाहिं बाधका ॥९२॥

दोहा—पड़िमा नाम जु तुल्यकौ, मुनिमारगकी तुल्य।
मारग श्रावककौ महा, भाषैं देव अतुल्य ॥९३॥
बहुरि प्रतिज्ञाकों कहैं, पडिमा श्री भगवान।
होंहि प्रतिज्ञा धारका, श्रावक समतावान ॥९४॥
मुनिके लहुरे वीर हैं, श्रावक पड़िमाधार।
मुनि श्रावकके धर्मको, मूल जु समकित सार ॥ ९५ ॥
सम्यक चउ गतिके लहैं, कहै कहालो कोइ।
पै तथापि वरणन करूं, सवेगादिक सोइ ॥ ९६ ॥
सम्यक्के गुण अतुल हैं, श्रावक तिर नर होय।
मुनिव्रत मिनखहि धारही, द्विज छत बाणिज होय ॥९७॥
संवेगो निरवेद अर, निंदन गरहा जानि।
समता भक्ति दयालता, वात्सल्यादिक मानि ॥ ९८ ॥
धर्म जिनेसुर कथित जो, जीवदयामय सार।
तासौं अधिक सनेह है, सो संवेग विचार ॥ ९९ ॥
भव तन भोग समस्ततें, विरकत भाव अखेद।
सो दूजौ निरवेद गुण, करै कर्मकौ छेद ॥ १०० ॥

तीजौ निंदन गुण कह्यौ, निजकों निंदे जोइ।
मनमैं पछितावौ करै, भव भरमणकौ सोइ ॥ १ ॥
चौथौ गरहा गुन महा, गुरुपै भाषै वीर।
अपने औगुन समकिती, नहीं छिपावै धीर ॥ २ ॥
पंचम उपशम गुण महा, उपसमता अभिप्राय।
प्रान हरै ताहूथकी, वैर न चित्त धराय ॥ ३ ॥
छट्ठौ गुण भक्ती धरैं, सम्यकदृष्टी संत।
पञ्च परमपदको महा, धारै सेव महंत ॥ ४ ॥
सप्तम गुण वात्सल्य जो, जिन धर्मिनसौं राग।
अष्टम अनुकंपा गुणो, जीवदया व्रत लाग ॥ ५ ॥
उक्तञ्च गाथा-संवेऊ णिवेऊ, णिंदण गरुहा य उवसमो भत्ती।
वच्छल्लं अनुकंपा, अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते ॥ ६ ॥
चौपाई-भव्यजीव चहुंगतिके माहीं, पावैं समकित संसय नाहीं।
पंचेन्द्री सैनी विनु कोय, और न सम्यकदृष्टी होय ॥७॥
जब संसार अल्प ही रहै, तब सम्यक दरशनकों गहै।
प्रथम चौकरी तीन मिथ्यात, ए सातों प्रकृती विख्यात ॥८॥
इनके उपशमतैं जो होय, उपशम नाम कहावै सोय।
इनके क्षयतैं क्षायिक नाम, पावै मनुष महागुण धाम ॥९॥
क्षायिक मनुष विना नहिं लहै, क्षायक तुरत ही भववन दहै।
केवल आदि मूल इह होय, क्षायिक सो नहिं सम्यक कोय ॥१०॥
अब सुनि क्षय उपसमकौ रूप, तीन प्रकार कह्यौ जिनभूप।
प्रथम चौकरी क्षय है जहा, तीन मिथ्यात उपसमैं तहा ॥११॥
पहली क्षय उपशम सो जानि, जिनवानी उरमैं परवानि।

प्रथम चौकरी पहल मिथ्यात, ए पांचौं क्षय हैं दुखदात ॥१२॥
द्वै मिथ्यात उपशमैं जहां, दूजी क्षय उपशम है तहां।
प्रथम चौकरी दु मिथ्यात ए षट क्षय होवैं अद्भुतात ॥ १३ ॥
तृतिय मिथ्यात उपशमैं भया, तीजो क्षय उपशम सो लया।
वेदसम्यक च्यारि प्रकार, ताके भेद सुनौं निरधार ॥ १४ ॥
प्रथम चौकरी क्षय है जहां, दोय मिथ्यात उपशमैं तहां।
तृतिय मिथ्यात उदै जब होय, पहलौ वेदक जानौ सोय ॥१५॥
प्रथम चौकरी प्रथम मिथ्यात, ए पांचौं क्षय होय विख्यात।
द्वितिय मिथ्यात उपशमैं जहां, उदै होय तीजेकौ तहां ॥१६॥
भेद दूसरौ वेदकतणौं, जिनमारग अनुसारैं भणौं।
प्रथम चौकरी दो मिथ्यात, ए षट प्रकृति होंय जब घात ॥१७
उदै तीसरौ मिथ्या होय, तीजौ वेदक कहिये सोय।
प्रथम चौकरी मिथ्या दोय, इन छहुंकौ उपशम जब होय ॥१८
उदै होय तीजौ मिथ्यात, सो चौथौ वेदक विख्यात।
ए नव भेद सु सम्यक कहे, निकटभव्य जीवनिनैं गहे ॥१९॥

दोहा—द्वै उपशम वरतै त्रिविध, वेदक च्यारि प्रकार। क्षायिक उपशम भेलि करि, नवधा समकित धार ॥ २० ॥ नवमे क्षायिक सारिखौ, समकित होय न और। अविनाशी आनंदमय, सो सबकौ सिरमौर ॥ २१ ॥ पहली उपशम ऊपजै, पहली और न कोय। उपसमके परसादतैं, पाछे क्षायिक होय ॥ २२ ॥ क्षायिक बिनु नहिं कर्मक्षय, इह निश्चै परवानि। क्षायक दायक सर्व ए, सम्यकदर्शन मानि ॥ २३ ॥ उपशमादि सम्यक सबै आदि अन्त जुत जानि। क्षायिककौ नहिं अन्त है, सादि अनन्त बखानि ॥ २४ ॥ सम्यकदृष्टी

सर्व ही, जिनमारगके दास । देव धर्म गुरु तत्त्वको, श्रद्धा अविचल भास ॥ २५ ॥ अनेकात सरधा लिया, शातभाव धर धीर । सप्तभंग वानी रुचै, जिनवरकी गंभीर ॥ २६ ॥ जीव अजीवादिक सबै, जिन आज्ञा परवान । जाने संसै रहित जो धारै दृढ सरधान ॥२७॥ सप्त तत्त्व षट द्रव्य अर, नव पदार्थ परतक्ष । अस्तिकाय हैं पंच ही तिनकौ धारै पक्ष ॥ २८ ॥ इष्ट पंच परमेष्टिकौ, और इष्ट नहिं कोय । मिष्ट वचन बोले सदा, मनमै कपट न होय ॥ २९ ॥ पुत्र-कलत्रादिक उपरि, ममता नाहिं बखान ॥ ३० ॥ तृण सम मानै देहको, निजगम जानै जीव । धरै महा उपशानता, त्यागै भाव अजीव ॥ ३१ ॥ सेवे विषयनिको तऊ, नही विषयसूं राग । वरतै गृह आरम्भमै, धारि भाव वैराग ॥ ३२ । कबै दशा वह होयगी, धरियेगो मुनिवृत्त । अथवा श्रावक वृत ही, करियेगो जु प्रवृत्त ॥३३॥ धृग धृग अव्रतभावको या सम और न पाप । क्षणभंगुर विषया सबे देहि कुगति दुख ताप ॥ ३४ ॥ इहै भावना भावतो, भोगनितैं जु उदास । सो सम्यकदरसी भया पावै तत्त्वविलास ॥ ३५ ॥ सतम गुणके ग्रहणको, रागी होय अपार । साधुनिकी सेवा करै, सो सम्यकगुण धार ॥ ३६ ॥ साधर्मिनसौं नेह अति नहिं कुटुम्बसौं नेह । मन नहि मोह-विलासमैं, गिनै न अपनी देह ॥ ३७ ॥ जीव अनादि जु कालकौ, बसै देहमे गह । बंध्यौ कर्म प्रपचसौं, भवमैं, भ्रमो अच्छेह ।३८। त्याग जोग जगजाल सब, लेन जोग निज भाव । इह जाके निश्चै भयौ, सो सम्यक परभाव । भिन्न भिन्न जानै सुधी, जड-चेतनकौ रूप । त्यागै देह सनेह जो, भावै भाव अनूप ।४०। क्षार नीरकी भांति ये, मिलैं जीव अर कर्म । नांहि तथापि मिलैं कबै

भिन्न भिन्न हैं धर्म ॥ ४१ ॥ यथा सर्पकी कंचुकी, यथा खड्गकौ म्यान। तथा लखैं बुध देहकों, पायौ आतमज्ञान ॥४२॥ दोष समस्त वितीत जो, वीतराग भगवान। ता बिन दूजौ देव नहिं, इह धार सरधान ॥४३॥ सर्व जीवकी जो दया, ताहि सरदहै धर्म। गुरुमानै निरग्रन्थकों, जाके रंच न भर्म ॥ ४४ ॥ जपै देव अरहतकों दास भाव धरि धीर। रागी दोषी देवकी, सेव तजै वरवीर ॥ ४५ ॥ रागी दोषी देवको, जो मानै मतिहीन। धर्म गिनै हिंसा विषैं, सो मिथ्या मतिहीन ॥ ४६ ॥ परिगृह धारककों गुरु, जो जानैं जग माहिं। सो मिथ्यादृष्टी महा यामैं संसै नाहिं ॥ ४७ ॥ कुगुरुकुदेव कुधर्मकों, जो ध्यावै हिय अंध। सो पावै दुरगति दुखी, करै पापकौ बंध ॥ ४८ ॥ सम्यकदृष्टी चिंतवै या संसार मंझार। सुखकौ लेश न पाइये, दीखै दुःख अपार ॥ ४९ ॥ लक्ष्मीदाता और नहिं, जीवनिकों जगमाहिं। लक्ष्मी दासी धर्मकी, पापथकी विनसाहि ॥ ५० ॥ जैसौ उदय जु आवही पूरब बांध्यौ कर्म। तैसौ भुगतैं जीव सब, यामैं होय न भर्म ।५१ पुण्य भलाई कार है, पाप बुराई कार। सुखदुखदाता होय यह, और न कोइ विचार ॥ ५२। निमितमात्र पर जीव हैं, इह निहचै निरधार। अपनैं कीये आप ही, फल भुगते संसार ॥ ५३। पुन्यथकी सुर नर हुवै, पापथकी भरमाय। तिर नारक दुरगति विषैं, भव भव अति दुख पाय। ५४। पाप समान न शत्रु है, धम समान न मित्र। पाप महा अपवित्र है, पुण्य कछुक पवित्र। ५५। पुण्यपापतैं रहित जो, केवल आतम भाव। सो उपाइ निरवाणकौ, जामैं नहीं विभाव। ५६। झूठी माया जगतकी, झूठौ सब संसार। सत्य जिनेसुर धर्म है, जा करि ह्वै भवपार ॥ ५७। व्यंतर देवादिकनिकों, जे शठ

लक्ष्मीहेत। पूजैं ते आपज लहैं लक्ष्मी देय न प्रेत ॥ ५८। भक्ति किये पूजे थके, जो विंतर धन देय। तौ सब ही धनवंत ह्वै, जग जन तिनकों सेय ॥ ५९। क्षेत्रपाल चंडी प्रमुख, पुत्र कलत्र धनादि। देन समर्थ न कोइकों, पूजैं शठ जन बादि ॥ ६०। जो भवितव जा जीवको, जा विधान करि होय। जाहि क्षेत्र जा कालमैं, निःसंदेह ह्वै सोय ॥ ६१ ॥ जान्यौ जिनवर देवने, केवलज्ञान मंझार। होनहार संसारकौ, ता विधि ह्वै निरधार ॥ ६२। इह निश्चै जाकै भयो, सो नर सम्यकवंत। लखै भेद षट द्रव्यके, भावैं भावअनंत ॥ ६३। दृढ़ प्रतीत जिनवैनकी, सम्यकदृष्टी सोय। जाकें संसै जीव मैं, सो मिथ्याती होय ॥ ६४ ॥

सोरठा—जो नहिं समझी जाय, जिनवाणी अति सूक्षमा।
तौ ऐसे उर लाय, संदेह न आनै सुधी ॥ ६६ ॥
बुद्धि हमारो मंद, कछु समझै कछु नाहिं।
जो भाष्यौ जिनचंद, सो सब सत्यस्वरूप है ॥ ६७ ॥
उदै होयगौ ज्ञान, जब आवर्ण नसाइगौ।
प्रगटेगौ निजध्यान, तब सब जानो जायगो ॥ ६८।
जिनवानी सम और, अमृत नहिं संसारमें।
तीन भुवन सिरमोर, हरै जन्म जर मरण जो ॥ ६९ ॥
जिनधर्मिनसो नेह, लायौ नेह जिनधर्मसु।
बरसै आनन्द मेह, भक्त भयौ जिनराजको ॥ ७० ॥
सो सम्यक धरि धीर, लहै निजातम भावना।
पावै भवजल तीर, दरसन ज्ञान चरित्तैं ॥ ७१ ॥
ऋद्धिनमैं बड़ ऋद्धि, रतनिमें रतन जु महा।

या सम और न सिद्धि, इह निश्चै धारो अथा ॥ ७२ ॥
योगनिमें निज योग, सम्यक दरसन जानि तू।
हनै सदा सब शोक, है आनन्ददायी महा ॥ ७३ ॥
जोगीरासा वंदनीक है सम्यकदृष्टी, यद्यपि व्रत न कोई।
निंदनीक है मिथ्यादृष्टी, जो तपसी हू होई ॥
मुक्ति न मिथ्यादृष्टी पावै, तपसी पावै सर्गा।
ज्ञानी व्रत बिना सुरपुर ले, तपधरि ले अपवर्गा ॥ ७४ ॥
दुरगति बंध करै नहिं ज्ञानी, सम्यकभावनि माहीं।
मिथ्याभावनिमैं दुरगतिकौ, बंध होय बुधि नाहीं ॥
समकित विन नहिं श्रावकवृत्ती, अर मुनिव्रत हू नाहीं।
मोक्षहु सम्यक बाहिर नाहीं, सम्यक आपहि माहीं ॥७५॥
अंग निशंकित आदि जु अष्टा, धारै सम्यक सोई।
शंका आदि दोष मल रहिता, निरमल दरसन होई ॥
जिनमारग भाषै जु अहिंसा, हिंसा परमत भाषै।
हिंसामारगकी तजि सरधा, दयाधर्म दृढ़ राखै ॥ ७६ ॥
संदेह न जाके जिय माहीं, स्यादवादकौ पंथा।
पकरै त्यागि एक नयवादी, सुनै जिनागम ग्रंथा ॥
पहली अंग निससै सोई, दूजौ कांक्षा रहिता।
जामैं जगकी वांछा नाहीं, आतम अनुभव सहिता ॥७७॥
शुभकरणी करि फल नहिं चाहै, इह भव परभवके जो।
करै कामना रहित जु धर्मा, ज्ञानामृत फल ले जो ॥
इह भाष्यौ निःकांक्षित अंगा अब सुनि तीजे भेदा।
निरविचिकित्सा अङ्ग है भाई जा करि भव भ्रम छेदा ॥७८॥

जे दश लक्खण धर्म धरैया, साधु शांतरस लीना।
तिनकौ लखि रोगादिक जुक्ता, सेव करै परवीना॥
सूग न आनै मनमैं क्यूं हीं, हरै मुनिनकी पीरा।
सो सम्यकदृष्टी जिनधर्मा, तिरै तुरत भवनीरा॥ ७९॥
चौथो अंग अमूढ स्वभावा, नहीं मूढता जाके।
जीवघातमैं धर्म न जाने, संसै मोह न ताके॥
अति अवगाढ़ गाढ़ परतीती, कुगुरु कुदेव न पूजै।
जिन सासनकौ शरणो ले करि, जाय न मारग दूजै॥ ८०॥
जानैं जीवदयामैं धर्मा, दया जैन ही माहीं।
आन धर्ममैं करुणा नाहीं, परतख जीव हताई॥
जो शठ लज्जा लोभ तथा भै, करिके हिंसा माहीं।
मानै धर्म सो हि मिथ्याती, जामैं समकित नाहीं॥ ८१॥
पचम अङ्ग नाम उपगूहन, ताकौ सुनहु विवेका।
पर जीवनिके आखिन देखें ढाकै दोष अनेका॥
आप जु दोष करै नहिं ज्ञानी सुकृत रूप सदा ही।
अपने सुकृत नाहिं प्रकाशै, टरै न एक सदा ही॥ ८२॥

दोहा—ढाकै अपने शुभ गुणा ढाकै परके दोष। गावैं गुण पर-जीवके, रहै सदा निरदोष॥८३॥ जो कदाचि दूषण लगै, मन वच काय करेय। तौ गुरु पै परकाशिकै, ताकौ दंड जु लेय॥ ८४॥ जप तप व्रत दानादि कर, दूषण सर्व हरेय। करै जु निंदा आपकी, पर-निंदा न करेय॥८५॥ जे परगासैं पारके, औगुन तेहि अयान। जे परगासै आपके, औगुण तेहि सयान॥८६॥ जे गावैं गुन गुरुनिके, ते समदृष्टी जानि॥८७॥ छट्ठो अंग कहों अवै, थिरकरणा गुणवान।

धर्मथकी चिचलेनिकूं, प्रतिबोधे मतिवान ।८८। थापै धर्म मझार जो, करै धर्मकी पक्ष । आप डिगे नहिं धर्मतें, भावे भाव अलक्ष ॥८६॥ थिरतागुण सम्यक्तको, प्रगट बात है एह । चित्त अथिरता रूप जो, सो मिथ्यात गिनेह ॥६०॥ सुनो सातमूं अंग अब, जिन मारगसो नेह । जिनधर्मीकूं देखि करि, बरसै आनंद मेह ॥६१॥ तुरत जात बछरानि परि, हेत करै ज्यूं गाय । त्यूं यह साधर्मी उपरि हेत करै अधिकाय ।.६२॥ जे ज्ञानी धरमातमा, मुनि श्रावक व्रतवंत । आर्या और सुश्राविका, चउविधि संघ महंत ॥६३॥ तथा अव्रती समकिती, जिनधर्मी जग माहिं । तिनसों राखै प्रीति जो, यामैं संसै नाहिं ॥६४॥ तन मन धन जिनधर्म परि, जो नर वारै डारि । सो वातसल्य जु अङ्ग है, भाख्यौ सूत्र विचारि ॥६५॥ अष्टम अङ्ग प्रभावना, कह्यौ सुनों धरि कान । जा विधि सिद्धान्तनि विषै, भाष्यौ श्री भगवान ।६६। भांति भाति करि भासई, जिनमारगकों जो हि । करै प्रतिष्ठा जैनकी, अङ्ग आठमो होहि ।६७ जिनमंदिर जिनतीरथा, जिन प्रतिमा जिनधर्म । जिनधर्मी जिनसूत्रकी, करै सेव बिन भर्म ॥६ ॥ जो अति श्रद्धा करि करै, जिनशासनकी सेव । बोलैं प्रियवाणी महा, ताहि प्रसंसै देव ॥६६॥ जो दसलक्षण धर्मकी, महिमा करै सुजान । इन्द्रिनके सुखकों गिनै, नरक निगोद निसान ॥ १०० ॥ कथनी करै न पारकी, फुनि फुनि ध्यावै तत्त्व । भावै आतमभाव जो, त्यागै सर्व ममत्व ॥ ० ॥ कहे अङ्ग ये प्रथम ही, मूल गुणनिके माहिं । अब हु पड़िमामें कहै, इन सम और जु नाहिं ॥ २ ॥ बार और थुति जोग ये, सम्यकदरसन अङ्ग । इनकों धारैं सो सुधी, करै कर्मको भङ्ग ॥ ३ ॥ अष्ट अङ्गको धारिवौ, अष्ट मदनिको त्याग ।

षट अनायतन त्यागिवौ, अतीचार नहिं लाग ॥ ४ ॥ ते भाषै गुरु पंचविधि बहुरि मूढता तीन । तजिवौ सातों विसनकौ, भय सातौं नहिं कीन ॥ ५ ॥ ए सब पहले हू कहै, अब हू भाषै वीर । बार बार सम्यक्तकी, महिमा गाव धीर ॥ ६ ॥ अङ्ग निशंकित आदि बहु, अठ गुण संवेगादि । अष्ट मदनिको त्याग फुनि, अर वसु मूलगुणादि । ॥ ७ ॥ सात विसनकौ त्यागिवौ, अर तजिवौ भय सात । तीन मूढता त्यागिवौ, तीन शल्य फुनि भ्रात ॥ ८ ॥ षट अनायतन त्यागिवौ, अर पांचौं अतिचार । ए त्रेसठ त्यागै जु कोउ, सो सम-दृष्टी सार ॥ ९ ॥ चौथे गुण ठाणें तनी, कही बात ए भ्रात । है अव्रत परि जगततैं, विरकितरूप रहात ॥ १० ॥ नहिं चाहै अव्रत दसा, चाहै व्रतविधान । मनमैं मुनिव्रतकी लगन सो नर सम्यकवान ॥ ११ ॥ जैसे पकर्यौ चोरकूं दे तलवर दुख घोर । परवस पडि बंधन सहै, नहीं चोरकौ जोर ॥ १२ ॥ त्यूं हि अप्रत्याख्यानने, पकर्यौ सम्य-कवन्त । परवस अव्रतमैं रहै चाहै व्रत महन्त ॥ १३ ॥ चाहै चोर जु छूटिवौ, यथा बंधतैं वीर । चाहै गृहतैं छूटिवौ, त्यों सम्यकधर धीर ॥ १४ ॥ सात प्रकृतिके त्यागतैं, जेती थिरता जोय । तेती चौथे ठाणि है, इह जिन आज्ञा होय ॥ १५ ॥

ग्यारा व्रत वर्णन

दोहा—ग्यारा प्रकृति वियोगतैं, होय पंचमो ठाण । तब पड़िमा धारै सुधी, एकादश परिमाण ॥ १६ ॥ तिनके नाम सुनों सुधी, जा विधि कहै जिनंद । धारैं श्रावक धीर जे, तिन सम नाहिं नरिंद ॥ १७ ॥

दरसन प्रतिमा प्रथम है, दूजी व्रत अधिकार तीजी सामायक महा, चौथी पोषह धार ॥ १८ ॥ सचित्तत्याग है पंचमी, छट्ठी दिन तिय त्याग। तथा रात्रि अनसन व्रता, धारे तपसों राग ॥ १९ ॥ आनों पडिमा सातवीं, ब्रह्मचर्यव्रत धार। तजी नारि नागिन गिने, तजे मोह जंजार ॥ २० ॥ लौकिक वचन न बोलिवौ, सो दसमी बड़-भाग ॥ २१ ॥ एकादशमी होय विधि, क्षुल्लक ऐलि विवेक। है खंडाहार दु, तिनमैं मुनिव्रत एक ॥ २२ ॥ ऐलि महा उत्कृष्ट हैं, ऐलि समान न कोय। मुनि आर्या अर ऐलि ए, लिंग तीन शुभ होय ॥ २३ ॥ भाषी एकादश सबै, प्रतिमा नाम जु मात्र। अब इनको विस्तार सुनि, ए सब भव्य सुपात्र ॥ २४ ॥

चौपाई—प्रथम हि दरसनप्रतिमा सुणों, आतमरूप अनूप जु गुणौं।
दरसन मोक्षबीज है सही, दरसन करि शिव परसन कही ॥२५॥
दरसन सहित मूलगुण धरै, सात विसन मन वच तन हरै।
बिन अरहंत देव नहिं कोय, गुरु निरग्रन्थ बिना नहिं होय ॥२६॥
जीवदया बिन और न धर्म इह निहचै करि टारै भर्म।
संयम बिन तप होय न कदा, इह प्रतीति धारै बुध सदा ॥२७॥
पहली प्रतिमाको सो धनी, दरसनवंत कुमति सब हनी।
आठ मूल गुण विसन जु सात, भाषे प्रथम कथनमैं भ्रात ॥२८॥
तातैं कथन कियौ अब नाहिं, श्रावक बहु आरम्भ तजाहिं।
है स्वारथमैं साचौ सदा, कूड़ कपट धारै नहिं कदा ॥ २९ ॥
धरै शुद्ध व्यवहार सुधीर। परपीराहर है अगधीर।
सम्यक दरसन दृढ़ करि धरै; पापकर्मकी परणति हरै ॥३०॥
क्रय विक्रयमैं कसर न कोय, लेन देनमैं कपट न होय।

कियौ करार न लोपै जोहि, सो पहिली पड़िमा गुण होहि ।।३१
जाके उर कालिम नहिं रंच, जाके घटमैं नाहिं प्रपंच ।
जिन पूजा जप तप व्रत दान, धर्म ध्यान धारै हि सुजान ।।३२।।
गुण इकतीस प्रथम जे कहे, ते पहली पड़िमामें लहै ।
अब सुनि दूजी पड़िमाधार, द्वादश व्रत पाले अविकार ।।३३।।
पंच अणुव्रत गुणव्रत तीन, शिक्षाव्रत धारै परवीन ।
निरतीचार महामतिवान, जिनकौ पहली कियौ बखान ।।३४।।
अब तीजी पड़िमा सुनि संत, सामयक धारी गुणवन्त ।
मुनिसम सामायककी वार, थिरता भाव अतुल्य अपार ।।३५।।
करि तनकौ मनतैं परित्याग, भव भोगिनतैं होइ विराग ।
धरि कायोतसर्ग वर वीर, अथवा पदमासन धरि धीर ।।३६।।
षट षट घटिका तीनूं काल, ध्यावै केवलरूप विशाल ।
सब जीवनिसूं समता भाव, पश्च परमपद सेवै पांव ।। ३७ ।।
सो सब वर्णन पहली कियौ, बारा वरत कथनमैं लियौ ।
चौथी प्रतिमा पोसह जानि, पोसहमैं थिरता परवानि ।।३८।।
सो पोसहकौ सर्व सरूप, आगे गायौ अब न प्ररूप ।
पोसा समये साधु समान, होवै चौथी प्रतिमावान ।। ३९ ।।
दूजी पड़िमा धारक जोहि, सामायक पोसह विधि तेहि ।
धार परि इनकी सम नाहिं, नहिं थिरता तिन रंचक माहिं ।।४०।।
तीजी सामायक निरदोष, चौथी पड़िमा पोसह पोष ।
पंचम पड़िमा धरि बड़भाग, करै सचित वस्तुनिकौ त्याग ।।४१।।
काचौ जल अर कोरो धान, दल फल फूल तजै बुधिवान ।
छाल मूल कंदादि न चखै, कूंपल बीज अंकूर न भखै ।।४२।।

हरितकायकौ त्यागी होय, जीवदयाकौ पालक सोय।
सूको फल फोड्या बिन नाहिं, लेवौ जोगि न मंथनि माहिं ॥४३॥
लौंन न ऊपरसे ले धीर, लौंन हु सचित गिनै वर वीर।
माटी हात धोयवे काज, लेय अचित्त दयाके काज ॥ ४४ ॥
खोरी तथा माटी जो जली, सोई लेय न काची डली।
पृथ्वीकाय विराधै नाहिं, जीव असङ्ख कहे ता मांहि ॥ ४५ ॥
जलकायाकी पाले दया, सर्व जीवको भाई भया।
अगनिकायसों नाहिं विरोध, दयावन्त पावे निज बोध ॥ ४६ ॥
पवन करै न करावे सोय, षट कायाकौ पीहर होय।
नाहिं वनस्पति करै विरोध, जिनशासनकी धरै अगोध ॥४७॥
विकलत्रय अर नर तिर्यञ्च, सबकौ मित्र रहित परपंच।
जो सचित्तकौ त्यागी होय, दयावान कहिये नर सोय ॥४८॥
आप भखै नहिं सचित कदेय, भोजन सचित न औरहिं देय।
जिह सचित्तकौ कीयौ त्याग, जीता जीभ तज्यौ रसराग ॥४९॥
दया धर्म्म धारयौ तिहि धीर, पाल्यौ जैन बचन गंभीर।
अब सुनि छट्टी प्रतिमा संत, जा विधि भाषी वीर महंत ॥५०॥
द्वै मुहूर्त अब बाकी रहै, दिवस तहा तैं अनशन गहै।
द्वै मुहूर्त जब चढ़ि है भान, तौ लग अनशनरूप बखान ॥५१॥
दिनकों शील धरै जो कोय, सो छट्टी प्रतिमाधर होय।
खान पान नहिं रैनि मझार दिवस नारिकौ है परिहार ॥५२॥
पूछे प्रश्न यहां भवि लोग, निशिभोजन अर दिनकौ भोग।
ज्ञानी जीव न कोई करै, छट्टी कहा विशेष जु धरै ॥५३॥
ताकौ उत्तर धारौ एह, औरनिकौ व्रत न्यून गिनेह।

मन वच तन कृतकारित त्याग, करै न अनुमोदन बड़भाग ॥५४॥
तब त्यागी कहिये श्रुति मांहि, या माहीं कुछ संसै नाहिं ।
गमनागमन सकल आरम्भ, तज रैनिमें नाहिं अचम्भ ॥५५॥
महावीर वर वीर विशाल, दिनकौं ब्रह्मचर्य प्रतिपाल ।
निरतीचार विचार विशेष, त्यागै पापारम्भ अशेष ॥५६॥
जैनी जिनदासनिकौ दास, जिनशासनकौ करै प्रकाश ।
जो निशिभोजन त्यागी होय, छः मासा उपवासी सोय ॥५७॥
वर्ष एकमैं इहै विचार, जावो जीव लगै विस्तार ।
ह्वै उपवासनिकौ सुनि वीर, तातैं निशिभोजन तजि धीर ॥५८॥
जो निशिकों त्यागै आरम्भ, दिनहूं जाके अलपारम्भ ।
अब सुनि सप्तम पडिमा धनी, नारिनकूं नागिन सम गिनी ॥५९॥
धारयौ ब्रह्मचर्य व्रत शुद्ध, जिनमारगमैं भयो प्रबुद्ध ।
निशि वासर नारीकौ त्याग, तज्यौ सकल जाने अनुराग ॥६०॥
मन वच काय तजी सब नारि, कृतकारित अनुमोद विचारि ।
योनिरंध्र नारीकौ महा, दुरगति द्वार इहै उर लहा ॥६१॥
इन्द्राणी चक्राणी देखि, निंद्य वस्तु सम गिनै विशेष ।
विषैवासनामैं नहिं राग, जानैं भोग जु काले नाग ॥६२॥
विषैमगनता अति हि मलीन, विषयी जगमैं दीखै दीन ।
विषय समान न बैरी कोय, जीवनिकूं भरमावै सोय ॥६३॥
शील समान न सार न कोय, भवसागर तारक है सोय ।
अब सुनि अष्टम पडिमा भेद, सर्वारम्भ तजै निरखेद ॥६४॥
आप करे नहिं कछु आरम्भ, तजै लोभ छल त्यागै दम्भ ।
करवावै न करै सनुमोद, साधुनिकों लखि धरै प्रमोद ॥६५॥

मन वच काय शुद्ध करि सन्त, जग धन्धा धारै न महन्त।
जीव घाततैं कांप्यौ जोहि, सो अष्टम पड़िमाधर होहि ॥६६॥
असि मसि कृषि वाणिज इत्यादि, तजै, जगत काजे गनि वादि।
जाय पराये जीमै सोइ, गृह आरम्भ कछू नहिं होइ ॥६७॥
कहि करवावै नाही वीर, सहज मिलै तौ जीमैं धीर।
ले आवै कुल किरियावन्त, ताके भोजन ले बुधिवन्त ॥६८॥
जगत काज तजि आतम काज, करै सदा ध्यावै जिनराज।
दया नहीं आरम्भ मंझार, करि आरम्भ भ्रमै संसार ॥६९॥
तातैं तजै गृहस्थारम्भ, जीवदयाको रोप्यौ थम्भ।
करि कुटुम्बको त्याग सुजान, हिंसारम्भ तजै मतिवान ॥७०॥
दया समान न जगमैं कोइ, दया हेत त्यागैं जग सोइ।
अब नवमी प्रतिमा को रूप, धारौ भवि तजि जगत विरूप ॥७१॥
नवमी पड़िमा धारक धीर, तजै परिग्रहकों वर वीर।
अन्तरङ्गके त्यागै संग, रागादिकको नाहिं प्रसङ्ग ॥७२॥
बाहिरके परिग्रह घर आदि, त्यागै सर्व धातु रतनादि।
वस्त्र मात्र राखै बुधिवन्त, कनकादिक भाटे न महन्त ॥७३॥
वस्त्र हु बहु मोले नहिं गहै, अलप वस्त्र के आनन्द लहै।
परिग्रहकों जानै दुखरूप, इह परिग्रह है पापस्वरूप ॥७४॥
जहां परिग्रह लोभ तहां हि, या करि दया सत्य विनशाहि।
हिंसारम्भ उपावै एह, या सम और न शत्रु गिनेह ॥७५॥
तजै परिग्रह सो हि सुजान, तृष्णा त्याग करै बुधिवान।
जाकी चाह गई सो सुखी, चाह करैं ते दीखै दुखी ॥७६॥
बाहिज ग्रन्थ रहित जग माहिं, दारिद्री मानव शक नाहिं।

ते नहिं परिग्रह त्यागी कहैं, चाह करन्ते अति दुख लहैं ॥७७॥
जे अभ्यंतर त्यागैं सङ्ग, मूर्च्छारहित लहैं निजरङ्ग।
ते परिग्रहत्यागी हैं राम, वाछा रहित सदा सुखधाम ॥७८॥
ज्ञानिन बिन भीतरकौ सङ्ग, और न त्यागि सकैं दुख अङ्ग।
राग दोष मिथ्यात विभाव, ए भीतरके सङ्ग कहाव ॥७९॥
तजि भीतरके बाहिर तजै, सो बुध नवमी पड़िमा भजै।
वस्त्र मात्र है परिग्रह जहां, धातुमात्रकौ लेश न तहां ॥८०॥
नर्म पूंजणी धारै धीर, षट कायनिकी टारैं पीर।
जलभाजन राखैं शुचि काज, त्यागै धन धान्यादि समाज ॥८१॥
काठ तथा माटीकौ जोय, और पात्र राखै नहिं कोय।
जाय बुलायो जीमैं जोय, श्रावकके घर भोजन होय ॥८२॥
दशमी प्रतिमा धर बड भाग, लौकिक वचनथकी नहिं राग।
बिना जैनवानी कछु बोल, जो नहिं बोलै चित्त अडोल ॥८३॥
जगत काज सब ही दुखरूप, पापमूल परपञ्च स्वरूप।
तातैं लौकिक वचन न कहै, जिनमारगकी सरधा गहै ॥८४॥
मौन गहै जगसेती सोय, सो दशमी पड़िमाधर होय।
श्रुति अनुसारधर्मकी कथा, करै जिनेश्वर भाषी यथा ॥८५॥
जगतकाजकौ नहिं उपदेश, ध्यावै धीरज धारि जिनेश।
बोलै अमृत वानी वीर, षट कायनिकी टारै पीर ॥८६॥
तजै शुभाशुभ जगके काम, भयौ कामना रहित अकाम।
जे नर करैं शुभाशुभ काज, ते नहिं लहैं देश जिनराज ॥८७॥
रागद्वेष कलहके धाम, दीसैं सकल जगतके काम।
जगतरीतिमैं जे नर धसा, सो नहिं पावै उत्तम दसा ॥८८॥

दशमी पड़िमा धारक संत, ज्ञानी ध्यानी अति मतिवंत ।
गिनै रतन पाहन सम जेह, त्रण कंचन सब जानै तेह, ॥८९
शत्रु मित्र सम राजा रङ्क, तुल्य गिनै मनमें नहिं संक ।
बाधव पुत्र कुटुम्ब धनादि, तिनकूं भूलि गये गनि वादि ॥९०॥
जानैं सकल जीव समरूप, गई विषमता भागि विरूप ।
पर घर भोजन करैं सुजान, श्रावककुल जो किरियावान ॥९१॥
अल्प अहार तहांलें धीर, नहिं चिन्ता धारैं वर वीर ।
कोमल पीछी कमंडल एक, बिना धातुको परम विवेक ॥९२॥
इक कोपीन कणगती लया, छह हस्ता इक वस्त्र हु भया ।
इक तह एक पाटको जोय, यही राति दशमीकी होय ॥९३॥
जिन शासनको है अभ्यास, आगम अध्यातम अभ्यास ।
अब सुनि एका दशमी धार, सबमें उतकिष्टे निरधार ॥९४॥
बनवासी निरदोष अहार, कृतकारित अनुमोदन कार ,
मनवच काय शुद्ध अविका, सो एकादश पड़िमा धार ॥९५॥
ताके दोय भेद हैं भया, क्षुल्लक ऐलिक श्रावक लया ।
क्षुल्लक खण्डित कपड़ा धरैं, अरु कमडल पीछी आदरैं ॥९६॥
इक कोपीन कणगती गहै, और कछू नहिं परिगृह चहै ।
जिनशासनको दासा होय, क्षुल्लक ब्रह्मचार है सोय ॥९७॥
ऐलि धरैं कोपीन हि मात्र, अर इक शौचतनूं है पात्र ।
कोमल पीछी दया निमित्त, जिनवानीको पाठ पवित्त ॥९८॥
पच्च घरनिमें एक फेरैहिं, भोजन मुनिकी भांति करैहिं ।
ये है चिदानन्दमैं लीन, धर्मध्यानके पात्र प्रवीन ॥ ९९ ।
क्षुल्लक जीमैं पात्र मंझार, ऐलि करै करपात्र अहार ।

मुनिवर ऊभा लेय अहार, ऐलि अर्यका बैठा सार ॥१००॥
क्षुल्लक कतरावैं निज केश, ऐलि करैं शिरलोंच अशेष।
पहली पड़िमा आदि जु लेय, क्षुल्लकलों व्रत सबकूं देय ॥१॥
श्रीगुरु तीन वर्ण बिन कदे, नहिं मुनि ऐलितनैं व्रत दे।
पहलीसों छट्ठीलों जेहि, जघन्य श्रावक जानो तेहि ॥२॥
सप्तमि अष्टमि नवमी धार, मध्य सरावक हैं अविकार।
दशमी एकादशमी वन्त, उतकिष्टे भाषैं भगवन्त ॥३॥
तिनहूमें ऐलि जु निरधार, ऐलिथकी मुनि बड़े विचार।
मुनिगणमें गणधर हैं बड़े, ते जिनवरके सनमुख खड़े ॥४॥
जिनपति शुद्धरूप हैं भया, सिद्ध परैं नहिं दूजौ लया।
सिद्ध मनुज बिन और न होय, चहुगतिमैं नहिं नरसम कोय ॥५
नरमैं सम्यकदृष्टी नरा, तिनतैं वर श्रावक व्रत धरा।
षोड़स स्वर्गलोकलो जाहिं, अनुक्रम मोक्षपुरी पहुंचाहिं ॥६॥
पचमठाणें ग्यारा भेंद, धारैं तेहि करैं अघछेद।
इह श्रावककी रीति जु कही, निकट भव्य जीवनिनें गही ॥७॥
ऊपरि ऊपरि चढते भाव, विकरतभाव अधिक ठहराव।
नींव होय मन्दिरके यथा, सर्व व्रतनिके सम्यक तथा।

दान वर्णन

दोहा—प्रतिमा ग्याराकौ कथन, जिन आज्ञा परवान।
परिपूरण कीनूं भया अब सुनि दान बखान ॥८॥
कियौ दान बरनन प्रथम, अतिथिविभाग जु माहिं।
अबहू दान प्रबन्ध कछु कहिहौं दूषण नाहिं ॥१०॥

मनोहर छन्द—ए मूढ़ अचेतो कछुइक चेतो, आखिर जगमें मरना है।
धन रह ही याहीं संग न जाहीं, तातैं दान सु करना है ॥११॥
धन दान न सिद्धी ह्वै अबद्धी, दुरगति दुख अनुसरना है।
करपणता धारी शठमति भारी, तिनहिं न सुभगति बरना है ॥१२॥
यामैं नहिं संसा नृप श्रेयंसा, कियउ दान दुख हरना है।
सो ऋषभ प्रतापें त्याग त्रितापे, पायौ धाम अमरना है ॥१३॥
श्रीषेण सुराजा दान प्रभावा, गहि जिनशासन सरना है।
लहि सुख बहु भांती ह्वै जिन शांती, पायो वर्ण अवर्णा है ॥१४॥
इक अकृत पुण्या कियउ सुपुण्या, लहिउ तुरत जिय मरना है।
ह्वै धन्यकुमारा चारित धारा, सरवारथ सिधि वरना है ॥१५॥
सूकर अर नाहर नकुलरु वानर, नमि चारन मुनि चरना है।
करि दान प्रशंसा लहि शुभ वंशा, हरै जनम अर मरना है ॥१६॥

दोहा—वज्रजंघ अर श्रीमती, दानतनें परभाव। नर सुर सुख लहि उत्तमा भये जगतकी नाव ॥१७॥ वज्रजंघ आदीश्वरा, भए जगतके ईश। भये दानपति श्रीमती, कुलकर माहिं अधीश ॥१८॥ अन्नदान मुनिराजकों, देत हुते श्रीराम। करि अनुमोदन गीध इक, पंछी अति अभिराम ॥१९॥ भयौ धर्मधी अणुव्रती, कियौ रामकौ संग। रामसुखे जिन नाम सुनि, लह्यो स्वर्ग अतिरंग ॥२०॥ अनुक्रम पहुंचैगो भया, राम सुरग वह जीव। धारैगौ निजभाव सहु, तजिकैं भाव अजीव ॥२१॥ दानफारका अमित ही, सीझे अवधी भ्रात। बहुरि दान अनुमोदका, कौलग नाम गिनात ॥२२॥ पात्रदान सम दान अर, करुणादान बखान। सकल दान है अन्तिमो, जिन आज्ञा परवान ॥२३॥ आपथकी गुण अधिक जो, ताहि चतुर

विधि दान। देवो है अति भक्ति करि, पात्रदान सो जान ॥२४॥ जो पुनि सम गुन आपतैं, ताकों दैं नों दान। सो समदान कहै बुधा, करिकै बहु सनमान ॥२५॥ दुखी देखि करुणा करे, देवे बविध प्रकार। सो है करुणादान शुभ, भाषे मुनिगणधार ॥२६॥ सकल त्यागि ऋषिव्रत धरै, अथवा अनशन लेइ। सो है सकल प्रदानवर, जाकरि भव उतरेइ ॥२७॥ दान अनेक प्रकारके, तिनमैं मुखिया चार। भोजन औषधि शास्त्र अर, अभैदान अविकार ॥२८॥ तिनकौ वर्णन प्रथम ही अतिथि विभाग, मंझार। कियौ अबै पुनरुक्तके, कारण नहिं विस्तार ॥२९॥

सप्तक्षेत्र वर्णन—जो करवावै जिनभवन, धन खरचै अधिकाय।

सो सुर नर सुख पायकै, लहै धाम जिनराय ॥ ३० ॥
जो करवावै विधिथकी, जिनप्रतिमा बुधिमन्त।
मन्दिरमैं थसुरावई, सो सुख लहै अनन्त ॥ ३१ ॥
जब ममान जिनराजकी, प्रतिमा जो पधराय।
किंदरीसय वह देहरो, सोहू धन्य कहाय ॥ ३५ ॥
शिखर बध करवावई, जिन चैत्यालय कोय।
प्रतिमा उच्च करावई, पावै शिवपुर सोइ ॥ ३३ ॥
जल चदन अक्षत पहुप, अरु नैवेद्य सुदीप।
धूप फलनि जिन पूजई, सो ह्वै जग अवनीप ॥ ३४ ॥
जो देवल करि विधि थकी, करै प्रतिष्ठा धीर।
सुर नर पतिके मोह लहि, सो उतरै भवनीर ॥ ३५ ॥
जो जिन तीरथकी महा, यात्रा करै सुजान।
सफल जनम ताही तनों, भाषैं पुरुष प्रधान ॥ ३६ ॥

चउ अनयोगमई महा, द्वादशांग अविकार।
सो जिनवाणी है भया, करै जगतथी पार ॥३७॥
ताके पुस्तक सोधकर, लिखै लिखावे शुद्ध।
धन खरचै या वस्तुमैं, सो होवै प्रतिबुद्ध ॥३८॥
ग्रन्थनिकूं मूढ़े करै, करवावै धरि चित्त।
भले भले वस्त्रनि विषैं, राखै महा पवित्र ॥३९॥
जीरण ग्रन्थनिके महा, जतन करै बुधिवान।
ज्ञान दान देवै सदा, सो पावै निरवान ॥४०॥
जीरण जिनमंदिरतणी, मरमत जो मतिवान।
करवावै अति भक्तिसों, सो सुख लहै निदान ॥४१॥
शिखर चढ़ावै देहुरा, धन खरचै या भांति।
कलश धरै जिनमन्दिरां, पावै पूरण शांति ॥४२॥
छत्र चमर घण्टादिका, बहु उपकरणां कोय।
पधरावै चैत्यालये, पावै शिवपुर सोय ॥४३॥
दीप करावे द्रव्य दे धुवलावै जिनगेह।
धुजा चढ़ावै देव लों पावै धाम विदेह ॥४४॥
जो जिनमन्दिर कारनें, धरती देय सु वीर।
सो पावै अष्टम धरा, मोक्ष धाम गम्भीर ॥४५॥
चउविधि संघनिकी भया, मनवच तनकरि भक्ति।
करै हरै पीरा सबै सो पावै निज शक्ति ॥४६॥
सात क्षेत्र ये धर्मके, कहे जिनागम रूप।
इनमैं धन खरचै सुधा, पावै निध अनूप ॥४७॥

अथ वचनिका—प्रतिमा करावै, देवल करावै, पूजा तथा

प्रतिष्ठा करै, जिन तीरथकी यात्रा करै, शास्त्र लिखावै, चतुर्विधि संघकी भक्ति करै ए सप्त क्षेत्र जानि। यहां कोई प्रश्न करै, प्रतिमाजी अचेतन छै, निग्रह अनुग्रह करवा समर्थ नाहीं, सो प्रतिमाका सेवनथकी स्वर्गमुक्ति फलप्राप्ति कैसी भांति होय ? ताका समाधान। प्रतिमाजी शांत स्वरूपने धार्‌या छै, ध्यानकी रीतिने दिखावे छै। दृढ़ आसन, नासाग्रदृष्टी, नगन, निराभर्ण, निर्विकार जिसौ भगवानकौ साक्षात स्वरूप छै तिस्यौ प्रतिमाजीने देख्यां यादि आवै छै। परिणाम ऐसे निर्मल होइ छै। अर श्रीप्रतिमाजीने सागोपाग अपना चित्तमैं ध्यावै तौ वीतराग भावनै पावै यथा स्त्री-की मूरति चित्रामकी, पाषाणकी काष्ठादिककी देखि विकारभाव उपजै छै, तथा वीतरागकी प्रतिमाका दर्शनथकी ध्यानथकी निर्वि-कार चित्त होइ छै। अर आन देवकी मूरति रागी द्वेषी छै। उन्मा-दने धारै छै। सो वाका दरशन ध्यान करि राग दोष उन्माद बढ़े छै। तीसौं आराधना जोग्य,दरसन जोग्य जिनप्रतिमा ही छै। जीवां-ने मुक्ति मुक्तिदाता छै। यथा कल्पवृक्ष, चिन्तामणि औषधि,मंत्रादिक सर्व अचेतन छै, तणि फलदाता छैं तथा भगवतकी प्रतिमा अचेतन छै, परन्तु फलदाता छै। ज्ञानी तो एक शातभावका अभिलाषी छै। सो शान्तभावने जिनप्रतिमा मूर्तवन्त दिखावै छै। तीसूं ग्यान्यांने अर जगतका प्राणी संसारीक भोग चावै छै। सो जिनप्रतिमाका पूजनथकी सर्व प्राप्ति होय छै। ऐसो जानि, हित मानि, संसै भानि जिनप्रतिमाकी सेवा जोग्य छै।

कवित्त—श्रीजिनदेवतनी अरचा अर साधु दिगम्बरकी अतिसेव।
श्रीजिनसूत्र सुनै गुरु सन्मुख, त्यागै कुगुरु कुधर्म कुदेव ।।४८।।

धारै दानशील तप उत्तम, ध्यावै आतमभाव अछेव। सो सब जीव लखै आपन सम, जाके सहज दयाकी टेव ॥४६॥ दानतनी विधि है जु अनन्त, सबै महिं मुख्य किमिच्छिक दाना। ताके अर्थ सुनूं मन-वांछित, दान करै भवि सूत्र प्रवाना ॥५०॥ तीरथकारक चक्र जु धारक, देहि सकैं इह दान निधाना। और सबै निज शक्ति प्रमाण, करैं शुभ दान महा मतिवाना ॥५१।

सोरठा—कोउ कुबुद्धी कूर, चितवै चितमें इह भया। लहिहौं धन अतिपूर, तब करिहूं दानहि विधी ॥५२॥ अब तौ धन कछु नाहिं, पास हमारे दानकौं। किस विधि दान कराहिं, इह मनमें धरि कृपण है ॥५३॥ यो न विचारै मूढ़, शक्ति प्रमाणै त्याग है। होय धर्म आरूढ़, करै दान जिनवैन सुनि ॥५४॥ कछु हू नाहिं जुरै जु दान बिना धृग जनम है ॥५५॥ रोटी एकहु नाहिं तौहू रोटी आध ही। जिनमारगके माहिं, दान बिना भोजन नहीं ॥५६॥ एक ग्रास ही मात्र, देवै अतिहि अशक्त जो। अर्घ ग्रास ही मात्र, देवै, परि नहि कृपण है ॥५७॥ गेह मसान समान, भाषे किरपणकौ श्रुति। मृतक समान बखान, जीवत ही कृपणा नरा ॥५८॥ जानौ गृद्ध समान, ताके सुत दारादिका। जो नहिं करै सुदान, ताकौ धन आमिष समा ॥५६॥ जैसे आमिष खाय, गिरध मसाणा मृतककौ तैसे धन बिनशांहि, कृपणतनौं सुतदारका ॥६०॥ सबकौं देनौ दान, नाकारौ नहि कोइसूं, करुणभाव प्रधान, नाकारो नही हिं कोइस, सब ही प्राणिनकौं जु, अन्न वस्त्र जल औषधी। सूखे तृण विधिसो जु, देनैं तिरजंचानिकौं ।६२। गुनी देखि अति भक्ति भावथकी देनौ महा। दान भक्ति अरु मुक्ति कारण मूल कहै गुरू ॥६३॥ पर पर-

नतिकौ त्यागता सम आन न दान कोड। देहादिककौ राग त्यागै, ते दाता बड़े ।।६४।। कह्यो दान परभाव, अब सुनि जलगालण विधी। छांड़ौ मुगध स्वभाव, जलगालण विधि आदरौ ।। ६५ ।।

जलगालण विधि

अडिल्ल छन्द—अब जल गालन रीति सुनौ बुध कान दे। जीव असंखिनीकौ हि प्राणकौ दान दे ।। जो जल वरतै छाणि सोहि किरिया घनी। जलगालणकी रीति धर्ममैं मुख भनी ।।६६।। नूतन गाढ़ौ वस्त्र गुडी विनु जौ भया। ताकौ गलनौ करै चित्त धरिके दया। ढेढ हाथ लम्बो जु हाथ चौरो गहै। ताहि दुंपड़तो करै छाणि जल सुख लहै ।।६७।। वस्त्र पुरानो अवर रङ्गको नांतिनां। राखै तिन तैं ज्ञानवत्तको पातिना ।। छाणन एक हु बून्द महीपरि जो परैं। भाषैं श्रीगुरुदेव जीव अगणित मरैं ।।६८।। वरतैं मूरख लोग अगाल्यौ नीर जे। तिनकों केतौ पाप सुनो नर धीर जे ।। असी बरसलौं पाप करैं धीवर महा। अवर पारधी भील वागुराविक लहा ।।६९।। तेतो पाप लहै जु एक ही बार जे। अणछाण्यूं वरतैं-हि वारि तनधार जे। ऐसो जानि कदापि अगाल्यौ तोय जी। बरतौ मति ता माहिं महा अघ होय जी ।।७०।। मकरीके मुखथकी तन्तु निकसैं जिसौ। अति सूक्षम जो बीर नीर कृमि है तिसौ ।। तामैं जीव असंखि उड़े ह्वै भ्रमर ही। जम्बू द्वीप न माय जिनेश्वर यौं कही ।।७१।। शुद्ध नातणे छाणि पाग जलकौं करै। छाण्यां जलथी धोय नांतणो जो धरै ।। अमनथकी मतिवन्त जिवाण्यूं जल-

विषे । बहुप्यावें सो धन्य श्रुतिविषें यूं लिखें ॥७२॥ जो निवाणको होय नीर ताही मढ़ै । पधरावैं बुधिवान परम गुरु यों कहै ॥ ओछे कपड़े नीर गालही जे नरा । पावैं ओछी योनि कहैं मुनि श्रुतधरा । जलगालण सम किरिया और नाहीं कही । जलगालणमें निपुण सोहि श्रावक सही ॥ चउथी पड़िमा लगें लेइ काचौ जला । आगे काचौ नाँहि प्राशुको निर्मला ॥ ७४ ॥ जाण्यूं काचौ नीर इकेन्द्री आनिये । द्वै घटिका त्रसजीव रहित सो मानिये ॥ प्रासुक मिरच लवङ्ग कपूरादिक मिला । बहुरि कसेला आदि वस्तुनैं जो मिला ॥ ७५ ॥ सो लेनों होय पहर पहली ही जैनमें । आगे त्रस निपजन्त कह्यौ जिनबेनमें तातौ भात उकालि वारि वसु पहर ही, आगे जङ्गम जीवहु उपजें सहज ही ॥७६॥

चौपाई—जे नर जिन आज्ञा नहिं आनैं, चितमैं आवे सोही ठानैं । भात उकाल अरैं महिं पानी, कछु इक उष्ण करैं मनमानी ॥७७॥ ताहि जुवरतैं अष्टहि पहरा, ते व्रत वर्जित अर श्रुति बहरा मरजादा माफिक नहिं सोई, ऐसें बरतौ भवि मति कोई ॥७८॥ जौ जन जैनधर्म प्रतिपाला, ता धरि जलकी है इह चाला । काचौ प्राशुक तातौ नीरा, मरजादामैं वरतैं वीरा ॥७९॥ प्रथमहिं श्रावककौ आचारा, जलगालण विधि है निरधारा । जे अणछाण्यौ पीवैं पाणी, ते धीवर वागुर सम जाणी ॥८०॥ बिन गाल्यो औरें नहिं प्याजै, अभख न खाजै मौन न ख्वाजै । तजि आलस अर सब परमादा, गाले जल चित धरि अहलादा ॥८१॥ जलगालण नहिं चिरा करे जो जल छाननमें चित्त धरे जो । अणछाण्यांकी बून्द हु धरती, नाखै नहीं कदाचित वरती ॥ ८२ ॥ बून्द परैं तौ ले प्रायश्चित्ता,

जाके घटमैं दया पवित्ता। यह जलगालणकी विधि भाई, गुरु आज्ञा अनुसार बताई ॥८३॥

दोहा—अब सुनि रात्रि अहारका, दोष महा दुखदाय। द्वै महूरत दिन जब रहै, तब तैं त्याग कराय ॥८४॥ दिवस महूरत द्वै चढ़ैं, तबलों अनसन होय। निशि अहार परिहार सो, अब न दूजौ कोय ॥८५॥ निशिभोजनके त्यागतैं, पावै उत्तम लोक। सुर नर विद्या धरनके, लहै महासुख थाक ॥८६॥ जे निशि भोजन कारका, तेहि निशाचर जान। पावैं नित्य निगोदके, जनम महा दुखखानि ॥८७॥ निशि वासरकौ भेद नहिं, खात तृप्ति नहिं होय। सो काहेके मानवा, पशुहूंतैं अधिकोय ॥ ८८ ॥ नाम निशाचर चारकौ, चोर समाना तेहि। चरैं निशाको पापिया, हरैं धर्ममति जेहि ॥ ८९ ॥ बहुरि निशाचर नाम है, राक्षसकौ श्रुतिमाहिं। राक्षस सम जो नर कुधी, रात्रि अहार कराहिं ॥९०॥ दिन भोजन तजि रंनिमैं, भोजन करैं विमूढ। ते उलूक सम जानिये, महापाप आरूढ ॥९१॥ मास अहारी सारिखे, निशिभोजी मतिहीन। जनम जनम या पापतैं, लहैं कुगति दुखदीन ॥ ९२ ॥

नाराच छन्द – उलूक काक औ, बिलाव श्वान गर्दभादिका।
गहै कुजन्म पापिया, जु ग्राम शूकरादिका।
कुछारछोवि माहिं, कीट होय रात्रि भोजका।
तजैं निशा अहारकौं, विमुक्ति पंथ खोजका ॥ ९३ ॥
निशा महैं करैं अहार, ते हि मूढ़धी नरा।
लहैं अनेक दोषकूं, सुधर्महीन पामरा।
जु कीट माछरादिका, भखैं अहार माहिं ते।

महा अधर्म धारिके, जु नर्क मांहि जांहि ते ॥ ६४ ॥

छन्द चाल—निशिमाहीं भोजन करही, ते पिंड अभक्षतैं भरही ।
भोजनमैं कीड़ा खाये, तातैं बुधि मूल नशाये ॥६५॥
जो जूं का खवैं जाये, तौ रोग जलोदर पाये ।
माखी भोजनमैं आवे, ततखिन सो वमन उपावे ॥६६॥
मकरी आवे भोजनमै, तौ कुष्ट रोग होय तनमैं ।
कंटक अरु काठजु खंडा, फंसि है जा गले परचंडा ॥६७॥
तौ कंठविथा विस्तारै, इत्यादिक दोष निहारै ।
भोजनमैं आवै बाला, सुर भंग होय ततकाला ॥६८॥
निशिभोजन करके जीवा, पावैं दुख कष्ट सदीवा ।
होवैं अति ही जु विरूपा, मनुजा अति विकल कुरूपा ॥६९॥
अति रोगी आयुस थोरा, ह्वै भागहीन निरजोरा ।
आदर रहिता सुख रहिता, अति ऊंच-नीचता सहिता ॥
इक बात सुनो मनलाई, हथनापुर पुर है भाई ।
तामैं इक हुतौ विप्रा, मिथ्यामग धारक छिप्रा ॥ १ ॥
रुद्रदत्त नाम है जाकौ, हिंसामारग मत ताको ।
सो रात्रि अहारी मूढ़ा, कुगुरनके मत आरूढ़ा ॥२॥
इक निशिकों भोंदू भाई, रोटीमैं चींटी खाई ।
भोजनमैं मींडक खायौ, उत्तम कुल तिहं विनशायौ ॥३॥
कालान्तर तजि निज प्राणा, सो घू घू भयो अयाणा ।
फुनि मरि करि गयौ जु नर्का, पायौ अति दुख संपर्का ॥४॥
नीसरि नरकजुतैं काणा, वह भयौ पापमय जाणा ।
बहुरें नर्कजुके कष्टा, पायौ जु सपष्टा ॥५॥

फुनि भयौ बिडाल सु पापी, जीवनिकूं अति संतापी।
सो गयौ नर्कमैं दुष्टा, हिंसा करिकै जो पुष्टा, ॥ ६ ॥
तहांतैं जु भयौ वह गृद्धा, फुनि गयौ नर्क अघवृद्धा।
नर्कजुतैं नीसरि पापी, हूवौ पशु पापप्रतापी ॥ ७ ॥
बहुरें जु गयौ शठ कुगती, घोर जु नर्कै अति विमती।
नीसरिकै तिरजंच हूवौ, बहु पाप करी पशु मूवौ ॥ ८ ॥
फुनि गयौ नर्कमैं कुमती, नारकतैं अजगर अमती।
अजगरतैं बहुरि नर्का, पायौ अति दुख संपर्का ॥ ६ ॥
नर्कजुतैं भयौ बघेरा, तहां किये पाप बहुतेरा।
बहुरें नारकगति पाई, तहांतैं गोधा पशु जाई ॥१०॥
गोधातैं नर्क निवासा, नरकतैं मच्छ विभासा।
सो मच्छ नरकमैं जायौ, नारकमैं बहु दुख पायौ ॥११॥
नारकतैं नीसरि सोई, बहुरी द्विजकुलमैं होई।
सोमस प्रोहितकौ पुत्रा, सो धर्मकर्मके शत्रा ॥१२॥
जो महीदत्त है नामा, सातों विसनजुसो कामा।
नग्रजुतैं लयौ निकासा, मामाके गयौ निरासा ॥१३॥
मामे हू राख्यौ नाहीं, तब काशीके वनमाहीं।
मुनिवर भेटे निरग्रन्था, जे देहि मुकतिकौ पंथा ॥ १४ ॥
ज्ञानी ध्यानी निजरत्ता, भवभोगशरीर विरत्ता।
जानैं जनमांतर वातें, जिनके जियमैं नहिं घातें ॥१५॥
तिनकों लखि द्विज शिरनायौ, सब पापकर्म विनशायौ।
पूछी जनमांतर वातां, जा विधि पाई बहु घातां ॥१६॥
सो मुनिने सारी भाखी, कछु गोपनीय नहिं राखी।

निशिभोजन सम नहिं पापा, जाकरि पायौ दुखतापा ।१७
सुनि करि मुनिवरके बैना, ब्राह्मण धार्यौ व्रत जैना ।
सम्यक अणुव्रत धारी, श्रावक हूवौ अधिकारी ॥ १८ ॥

दोहा—मात पिता अति हित कियौ, दियौ भूप अति मान ।
पुण्यउदै लक्षमी अतुल, पाप किये बहु हान ॥ १९ ॥ चौपाई—पूजा करै जपै अरहंत, महीदत्त हूवौ अतिसंत । जिन मन्दिर जिनबिम्ब रचाय, करी प्रतिष्ठा पुण्य उपाय ॥ २० ॥ सिद्धक्षेत्र वंदे अधिकाय, जिनसिद्धान्त सुनैं अधिकाय । केतौ काळ गयौ इह भांति, समैं पाय धारी उपशांति ॥ २१ ॥ शुभ भावनितैं छाड़े प्रान, पायौ षोडशस्वर्ग विमान । ऋद्धि महा अणिमादिक लई, आयु बीस द्वै सागर भई ॥२२॥ चयौ स्वर्गथी सो परवान, राजपुत्र हूवौ शुभ जान । देश अवंती उत्तम बसै, नगर उजेणी अति ही लसै ॥ २३ । तहां नरपती पृथ्वी-मल, जिनधर्मी सम्यक्ति अचल्ल । प्रेमकारिणी रानी महा, ताके उदर जन्म सो लहा ॥ २४ । नाम सुधारस ताकौ भयौ, मात पिता अति आनन्द लयौ । अनुक्रम वर्ष सातकौ जबै, विद्या पढ़ने सौंप्यौ तबै ॥ २५ ॥ शस्त्र शास्त्रमै बहु परवीण, भयौ अणुव्रती समकित लीन । जोवनवंत भयौ सुकुमार, ब्याह कियौ नहिं धर्म सम्हार ।२६॥ एक दिवस बनक्रीड़ा गयौ, बड़लरु बिजुरीतैं क्षय भयौ । ताकों लखि उपजौ वैराग, अनुप्रेक्षा चितई बड भाग ॥ २७ ॥ चन्द्रकीर्ति मुनिके ढिग जाय, जिनदीक्षा लीनी शिरनाय । अभ्यन्तर बाहिर चौवीस, ग्रन्थ तजौं मुनिकू नमि शीस ॥ २८ ॥ पञ्च महाव्रत गुप्ति जु तीन, पञ्च समिति धारी परवीन । शुकल ध्यान करि कर्म विनाशि, केवल पायौ अति सुखराशि ॥ २९ ॥ बहुत भव्य उपदेशे जिनें,

आयुकर्म पूरण करि तिनें। शेष अघातियकौ करि नास, पायौ मोक्ष पुरी सुखवास ॥३०॥ निशि भोजनतैं जे दुख लये, अर त्यागतैं सुख अनुभये। तिनके फलकौ वर्णन करी, कथा अणथमी पूरण करी ॥३१

छप्पय—इक चंडाली सुरभि व्रत सेठनिपैं लीयौ। मन वच तन दृढ़ होय त्यागि निशिभोजन कीयौ। व्रततनों परभाव त्याग तन अंजित काया। वाही सेठनिके जु उदर उपजी वर काया। गहि जैनधर्म धरि शीलव्रत, पापकर्म सब ही दहा। लहि सुरगलोक नरलोक सुख, लोकसिखरकौ पथ गहा ॥ ३२ ॥ एक हुतौ जु शृगाल कर सुदरसन मुनिराथा। त्यागो निशिखान पान जिनधर्म सुहाया। मरि करि हूवो सेठ नाम प्रीतकर जाकौ। अद्‌भुत रूपनिधान धर्ममैं अति चित ताकौ। भयौ मुनीश्वर सब त्यागिकै, केवल लहि शिवपुर गयौ। नहिं रात्रिभुक्ति परित्याग सम, और दूसरौ व्रत लयौ ॥३३॥

सोरठा—निशि भोजन करि जीव, हिंसक ह्वै चहुंगति भ्रमैं। जे त्यागै जु सदीव, निशिभोजन ते शिव लहैं ॥ ३४ ॥ अर्ध उमरि उपवास, माहीं बीते तिन तनी। जे जन है जिनदास, निशिभोजन त्यागैं सुधी ॥ ३५ ॥ दिवस नारिकौ त्याग, निशिको भोजन त्यागई। निशदिन जिनमत राग, सदा व्रतमूरति बुधा ॥ ३६ ॥ एक मासमैं भ्रात, पाख उपास फलैं फला। जे निशि माहिं न खात, च्यारि अहारा धीवना ॥ ३७ ॥ निसि भोजन सम दोष, भयौ न ह्वै है होयगौ। महा पापकौ कोष, मद्य मांस आहार सम ॥ ३८ ॥ त्यागैं निशिकौ खान, तिनें हमारी वंदना। देही अभय प्रदान, जीवगण-निकों ते नरा ॥ ३९ ॥ कौलग कहैं सुवीर, निशि भोजनके अव-गुणा। जानैं श्रीमहावीर, केवलज्ञान महंत सब ॥ ४० ॥

रतनत्रय वर्णन

सोरठा—अब सुनि दरसन ज्ञान, चरण मोक्षके मूल हैं। रतन-त्रय निज ध्यान, तिन बिन मोक्ष न ह्वै भया॥ ४१॥ सम्यकदर्शन सो हि, आतम रुचि श्रद्धा महा, करनों निश्चय जो हि, अपने शुद्ध स्वभावकों॥४२। निजकौ जानपनो हि, सम्यकज्ञान कहैं जिना। थिरता भाव घनो हि, सो सम्यकचारित्र है। ४३॥

चौपाई - प्रथमहि अखिल जतन करि भाई, सम्यक दरसन चित्त धराई। ताके होत सहज ही होई, सम्यकज्ञान चरन गुन दोई॥४४॥ जीवाजीवादिक नव अर्था, तिनकी श्रद्धा बिन सब व्यर्था। है श्रद्धान रहित विपरीता, आतमरूप अनूप अजीता॥ ४५॥ सकल वस्तु हैं उभय स्वरूपा, अस्ति--नास्तिरूपी जु निरूपा। अनेकांतमय नित्य अनित्या, भगवतने भाषे सहु सत्या॥ ४६॥ तामैं संसै नाहिं जु करनौ, सम्यक दरसन ही दिढ़ धरनौ। या भवमैं विभवादि न चाहै परभव भोगनिकूं न उमाहै॥ ४७॥ चक्री केशवादि जे पदई, इन्द्रादिक शुभ पदई गिनई। कबहुं वाछे कछुहि न भोगा, ते त्रि हिये भगवतके लोगा॥ ४८॥ जो एकान्तवाद करि दूषित, परमत गुण करि नाहिं जु भूषित। ताहि न चाहै मन वच तन करि, ते दरसन धारी उरमैं धरि॥ ४९॥ क्षुधा तृषा अर उष्ण जु सीता, इनहि आदि दुखभाव विनीता। दुखकारणमैं नाहिं गिलानी, सो सम्यकदरशन गुणखानी॥ ५०॥ लोकविषैं वहि मूढ़सभावा, श्रुति अनुसार लखौ निरदावा। जैनशास्त्र बिनु और जु ग्रन्था, शास्त्राभास गिनै अघपन्था॥ ५१॥ जैनसमय बिनु और जु समया, समयाभास

गिनै सहु अदया। बिनु जिनदेव और हैं जेते, लखै जु देवा भास सु ते ते ॥ ५२ ॥ श्रद्धानी सो तत्वविज्ञानी, धरै सुदर्शन आतम-ध्यानी। करै धर्मको जो बढ़वारी, सदा सु मार्दव आर्जवधारी॥५३॥ पर औगुन ढाकै बुधिवंता, सो सम्यकदरशनधर संता। काम क्रोध मद आदि विकारा, तिनकरि भये विकल मति धारा ॥५४ ॥ न्याय-मार्गतें विचल्यौ चाहै, मिथ्यामारगकौ जु उमाहै। तिनको ज्ञानी थिरचित कारै, कुकथकी भ्रमभाव निवारै ॥ ५५ ॥ आप सुथिर औरें थिर कारै, सो सम्यकदरशन गुण धारै। दयाधर्ममैं जो हि निरन्तर, करै भावना उर अभ्यन्तर ॥ ५६ ॥ शिवसुख लक्ष्मी कारण धर्मो, जिनभासित भवनाशित पर्मो। तासौं प्रीति धरै अधिकेरी, अर जिनधर्मीनसूं बहुतेरी ॥ ५७ ॥ प्रीति करै सो दर्शन-धारी, पावै लोकशिखर अविकारी। यथा तुरतके बछरा ऊपरि, गौ हित राखै मन वच तन करि ॥५८॥ तथा धर्म धर्मीनिसौं प्रीती, जाके ताने शठता जीती। आतम निर्मल करणों भाई, अतिसयरूप महा सुखदाई ॥ ५९ ॥ दर्शन ज्ञान चरण सेवन करि, केवल उतपति करनौ भ्रम हरि। सो सम्यक परभाव न होई, परभावनकौ लेश न कोई ॥ ६० ॥ दान तपो जिनपूजा करिकै, विद्या अतिशय आदि जु धरिकै। जैनधर्मकी महिमा कारै, सो सम्यकदरशन गुण धारै ॥६१॥ ए दरशनके अष्ट जु अंगा, जो धारै उर माहिं अभङ्गा। ते सम्यकी कहिये वीरा, जिन आज्ञा पालक ते धीरा ॥ ६२ ॥ सेवनीय है सम्यकज्ञानी, माया मिथ्या ममता भानी। सदा आत्मरस पीवैं धन्या, ते ज्ञानी कहिये नहिं अन्या ॥ ६३ ॥ यद्यपि दरशन ज्ञान न भिन्ना, एकरूप हैं सदा अभिन्ना। सहभावी ए दोऊ भाई, तौ पणि

किंचित भेद धराई ॥ ६४ ॥ भिन्न, भिन्न आराधन तिनका, ज्ञानवन्तके होई जिनका । एक चेतनाके द्वै भावा, दरसन ज्ञान महा सुप्रभावा ॥ ६५ ॥ दरसन है सामान्य स्वरूपा, ज्ञान विशेष स्वरूप निरूपा। दरसन कारन ज्ञान सु कार्या, ए दोऊ न लहैं हि अनार्या ॥ ६६ ॥ निराकार दर्शन उपयोगा, ज्ञान धरै साकार नियोगा। कोऊ प्रश्न करैं इह भाई, एककाल उत्पत्ति बताई ॥ ६७ ॥ दरसन ज्ञान दुहुनको तातैं, कारन कारिज होइ न तातैं। ताकौ समाधान गुरु भाषैं, जे धारैं ते निजरस चाखैं ॥ ६८ ॥ जैसे दीपक अर परकाशा, एक काल दुहुंको प्रतिभासा। पर दीपक है कारनरूपा, कारिज रूप प्रकाशनरूपा ॥६९॥ तैसैं दरशन ज्ञान अनूपा, एक काल उपजै निजरूपा। दरसन कारनरूपी कहिये, कारिजरूपी ज्ञान सु गहिये ॥७०॥ विद्यमान हैं तत्त्व सर्वे ही, अनेकांततारूप फवैं ही। तिनकौ जानपनौ जो भाई, संशय विभ्रम मोह नशाई ॥७१॥ जो विपरीत रहित निजरूपा, आतमभाव अनूप निरूपा। सो है सम्यकज्ञान महन्ता निजको जानपनों विलसन्ता। अष्ट अंगकरि शोभित सोई, सम्यकज्ञान सिद्धकर होई। ते धारौ भवि आठों शुद्धा, जिनवाणी अनुसार प्रबुद्धा ॥ ७३ ॥ शब्द शुद्धता पहलौं अङ्गा, शुद्ध पाठ पढ़ई जु अभङ्गा। अर्थ शुद्धता अङ्ग द्वितीया, करै शुद्धअर्थ जु विधि लीया ॥७४॥ शब्द अर्थ दुहुकी निर्मलता, मन वच तन काया निहचलता। सो है तीजा अङ्ग विशुद्धा, सम्यक धारै प्रतिबुद्धा ॥७५॥ कालाध्यायन चतुर्थम अङ्गा, ताको भेद सुनौ अतिरङ्गा। जा विरियां जो पाठ उचित्ता, सोई पाठ करै जु पवित्ता ॥७६॥ विनय अङ्ग है पंचम भाई, विनयरूप रहिवौ सुखदाई। जो

उपधान है छट्टम अङ्गा, योग्य क्रिया करिवौ जु अभङ्गा ॥७७॥ जिन भाषितकों अङ्गी करनौ, सो उपाधान अङ्गकौ धरनी। सत्तम है बहुमान विख्याता, ताकौ अर्थ सुनूं तजि घाता ॥७८॥ बहु सतकार सु आदर करिकै, जिन आज्ञा पालै उर धरिकै। अष्टम अङ्ग अनिन्हव धारै, ते अष्टम भूमी जु निहारै ॥७९॥ जो गुरुके ढिग तत्त्वविज्ञाना, पायो अद्भुत रूप निधाना। तों गुरुकौ नहिं नाम छिपावै, बार बार महागुण गावै ॥८०॥ सो कहिये जु अनिन्हव अङ्गा, ज्ञानस्वरूप अनूप अभङ्गा। सम्यक ज्ञान तपूं आराधन, ज्ञानिनकों करनूं शिवसाधन ॥८१॥ दरशन मोह रहित जो ज्ञानी, तत्त्वभावना दृढ़ ठहरानी। जे हि जथारथ जानैं भावा, ते चरित्र धरै निरदावा ॥८२॥ बिना ज्ञान नहिं चारित सोहै, बिना ज्ञान मनमथ मन मोहै। तातैं ज्ञान पाछेजु चरित्रा, भाख्यौ जिनवर परम पवित्रा ॥८३॥ सर्व पापमारग परिहारा, सकल कषायरहित अविकारा। निर्मल उदासीनता रूपा, आतमभाव सु चरित अनूपा ॥८४॥ सो चारित्र दोय विधि भाई, मुनिश्रावक व्रत प्रगट कराई। मुनिको चारित सर्व जु त्यागा, पापरीतिके पंथ न लागा ॥८५॥ जाके तेरह भेद बखानै, जिनबानी अनुसार प्रवानैं। पंच महाव्रत पंच जु समिति, तीन गुपति के धारक सुजती ॥ ८६ ॥ षटविधि जङ्गम पंचम थावर, निश्चयनय करि सब हि बराबर। तिन सर्वनिकी रक्षाकरिवौ, सो पहलो सु महाव्रत धरिवौ ॥ ८७ ॥ सत्सत सत्य वचनकौ कहिवो, अथवा मौनव्रतकों गहिवो। मृषावाद बोलै नहिं जोई, दूजौ महाव्रत है सोई ॥८८॥ कौड़ी आदि रतन परजाता घटि अघटित तसु भेद अनन्ता। दत्त अदत्त न परसै भाई, तीजो

महाव्रत है सोई ॥८९॥ पशु पंछी नर दानव देवा, भव वासी रमना-रत मेवा। तजै निरन्तर मदन विकारा, सो चौथो जु महाव्रत सारा ॥९०॥ द्विविधि परिग्रह त्यागै भाई, अन्तर बाहिर संग न काई। नगन दिगम्बर मुद्रा धारा, सो हि महाव्रत पंचम सारा ॥९१॥ ईर्यासमिति सुधी जो चालै, भाषा समिति कुभाषा टालै। भखै अहार अदोष मुनीशा, ताहि एषणा कहै अधीशा ॥९२॥ है अदाननिक्षेपा सोई, लेहि निरखि शास्त्रादिक जोई। अर परिठवणा पंचम समिती, निरखि भूमि डारै मल सुजती ॥९३॥ मनोगुप्ति कहिये मन रोधा, वचनगुप्ति जो वचन निरोधा। कायगुप्ति काया वस करिवौ, ए तेरह विधि चारित धरिवौ ॥९४॥ एकदेश गृहपति चारित्रा, द्वादश व्रत-रूपी हि पवित्रा। जो पहली भाख्यौ अब तातैं, कह्यौ नहीं श्रावकव्रत तातैं ॥९५॥ इह रतनत्रय मुनिके पूरा, होवैं अष्टकर्म दल चूरा। श्रावकके नहिं पूरण होई, धरै न्यूनतारूप जु सोई ॥९६॥ इह रतन-त्रय करि शिव लेवे, चहुंगतिकों भवि पानी देवे। या करि सीझे अरु सीझैंगे, यह छांड परमैं नहिं रीझैंगे ॥९७॥ या करि इन्द्रादिक पद होवै सो दूषण शुभकों बुध जोवै। इह तौ केवल मुक्ति प्रदाई, बंधन-रूप होय नहिं भाई ॥९८॥ बंध विदारन मुक्ति सुकारण, इह रतनत्रय जगत उधारण। रतनत्रय सम और न दूजौ, इह रतनत्रय त्रिभुवन पूजौ ॥९९॥ रतनत्रय विनु मोक्ष न होई, कोटि उपाय करै जो कोई। नमस्कार या रतनत्रयकों, जो दे परमभाव अक्षयकों ॥१००॥ रतन-त्रयकी महिमा पूरन, जानि सकै दस्यु कर्म विचूरन। मुनिवर हू पूरण नहिं जानैं, जिनआज्ञा अनुसार प्रवानैं ॥१०१॥ सहस जीभ करि वरणन करई, तिनहुं पै नहिं जाय वरणई। हमसे अल्पमती

कह्यौ कैसे, भाषै बुधजन धारहु ऐसे ॥१०२॥ त्रेपन किरियाको यह मूला, रत्नत्रय चेतन अनुकूला। जिन धार्यौ तिन आपौ तार्यो याकरि बहुलनि कारिज सार्यौ ॥१०३॥ धन्नि घरी वह ह्वैगी भाई, रतनत्रयसों जीव मिलाई। पहुंचैगो शिवपुर अविनाशी, ह्वावें वे अति आनन्द राशी ॥१०४॥ सब ग्रन्थनिमैं त्रेपन किरिया, इन करि इन बिन भववन फिरिया। जो ए त्रेपन किरया धारै, सो भवि अपना कारिज सारै ॥१०५॥ सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिन-बानी सुनि जिनि ए धरिया। तिन पाई निज परिणति शुद्धा, ज्ञान-स्वरूपा अति प्रतिबुद्धा ॥१०६॥ है अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा। ठौर ठौर इनकौ जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ॥१०७॥ गणधर गावैं मुनिवर गावै, देव भाषमैं शबद सुनावैं। पंचमकाल माहिं सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ॥१०८॥ तातैं यह नरभाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारे लीनी। जौ नरनारि पढ़ै मनलाई, सौ सुख पावैं अति अधिकाई ॥१०९॥ संवत सत्रासै पच्याण्णव, भादव सुदि बारस तिथि जाणव। मंगलवार उदयपुर माहैं, पूरन कीनी संसय नाहैं ॥११०॥ आनन्द—सुत जयसुतकौ मंत्री, जयकौ अनुचर जाहि कहै। सो दौलत जिनदासनि दासा, जिनमारगकी शरण गहै ॥ १११ ॥

* समाप्त *